अक्तूबर - दिसम्बर 1993 वर्ष : 25 ■ अंक : 4

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित

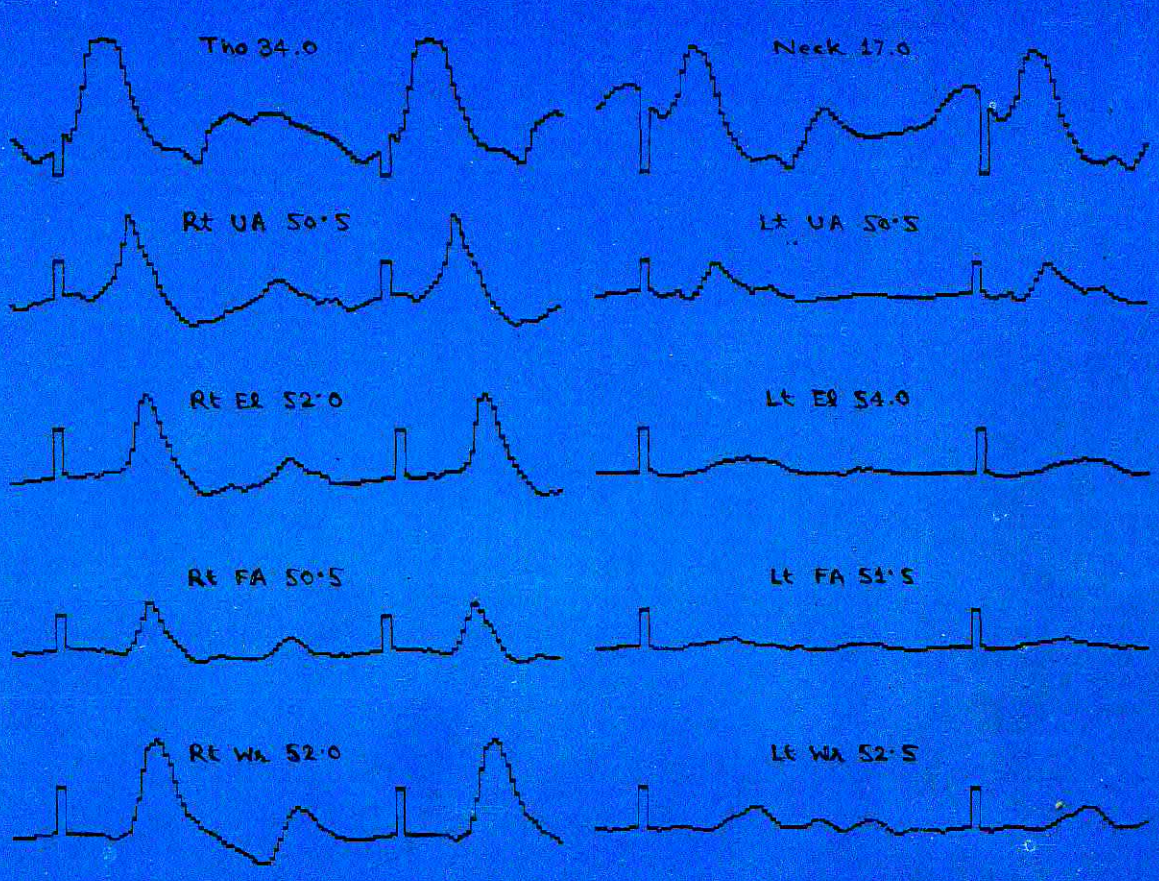

रक्त प्रवाह मापन : आयतन आलेख

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका ''वैज्ञानिक'' का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है ।

परिषद की सदस्यता एवं वैज्ञानिक पत्रिका का शुल्क (रुपए में) इस प्रकार है :

	परिषद सदस्यता			वैज्ञानिक शुल्क		
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक प्रति	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	5	15	40
संस्थागत	25	250	1		25	70

* वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा ।
* वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक निःशुल्क भेजी जाती है ।
* सभी शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम से डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल ऑर्डर द्वारा ही भेजें । कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क न भेजें ।
* कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिए गए सदस्यता आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें।

''वैज्ञानिक'' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में वैज्ञानिक अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें.मी. x 21 सें.मी. है।

विज्ञापन की दरें	:	(एक अंक के लिए)
अंतिम आवरण	:	रु. 2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु. 2,000/-
पूरा पृष्ठ	:	रु. 1,500/-
आधा पृष्ठ	:	रु. 800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1994

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दों टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) वैज्ञानिक कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु. 1500/-, द्वितीय रु. 1000/-, तृतीय रु. 500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो विशेष पुरस्कार - प्रत्येक रु.300/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 30 सितम्बर 1994

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं वैज्ञानिक की संपत्ति होंगी। वैज्ञानिक से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

पत्राचार का पता : डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, लेसर एवं प्लाज्मा प्रौद्योगिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, बम्बई - 400 085.

वैज्ञानिक

वर्ष : 25 * अंक 4

अक्तूबर-दिसम्बर 1993

व्यवस्थापन मंडल

श्री अशोक कुमार सूरी
डा. जगदीश चन्द्र मोंगा
श्री ललित कुमार
श्री जी.डी. मित्तल
श्री इंद्र कुमार शर्मा
श्री दीप प्रकाश

संपादन मंडल

डॉ. जनार्दन स्वरूप
डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय
श्री हरिओम मित्तल

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष	70 रु.	40 रु.

विदेश में
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	45 रु.	35 रु.
तीन वर्ष	125 रु.	95 रु.

एक प्रति - 5 रुपए

अनुक्रमणिका

संपादकीय 3

लेख

1. सिन्क्रोट्रान विकिरण : एक विलक्षण प्रकाश स्रोत 5
   - ए.पी. मिश्र
2. तमसो मा ज्योतिर्गमय : प्रकाश का वैज्ञानिक सफर 8
   - राजेन्द्र कुमार राय
3. रोगों के उपचार में भारतीय वनस्पति 11
   - रत्नेश निगम
4. उपग्रह संचार : एक क्रान्तिकारी खोज 14
   - गणेश कुमार पाठक
5. विद्युतीय अवरोध आयतन लेखिका : रक्त प्रवाह मापन 20
   - घनश्याम दास जिन्दल
6. चिर यौवन का रहस्य : रक्त का नियंत्रित नाड़ी दाब 24
   - डॉ. केशव कुमार
7. प्रोटीन और उसकी उपयोगिता 28
   - प्रो. सीताराम सिंह 'पंकज'
8. कार्बोहाइड्रेट्स और हमारा भोजन 31
   - बालकृष्ण काबरा 'एतेश'
9. लाख रंजक : प्रकृति की एक अनमोल देन 34
   - डॉ. अजित कुमार सेन
10. मलेरिया नियंत्रण और मछलियों की भूमिका 37
    - डॉ. मनमोहन प्रकाश
11. बायोगैस एक अक्षय ऊर्जा स्रोत 42
    - अमरीक सिंह एवं अनिल कुमार सक्सेना

*''वैज्ञानिक'' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारोंसे संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नही है।
*''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा. परिषद के पास सुरक्षित है।
*''वैज्ञानिक'' एवं हिं.वि.सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालय :
''वैज्ञानिक'', हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद, सूचना प्रभाग, सेंट्रल कॉम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई - 400 085

शुल्क भेजने का पता :
श्री जी.डी. मित्तल
कोषाध्यक्ष, हिं.वि.सा. परिषद
प्रशिक्षण प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई - 400 085

बाल विज्ञान
- बर्फ के पिघलने पर क्या पानी का तल अपरिवर्तित रहता है? 46
- एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उडेलने पर दूध ठंडा क्यों हो जाता है? 47

टिप्पणियां
i) पोस्टाग्लैन्डिन 48
ii) क्या सूर्य निस्तेज हो रहा है? 50
iii) कैंसर के इलाज में 51
iv) जीवाणु और विषाणु बम 53

विज्ञान समाचार
* भा. प. अ. केन्द्र में 54
* अन्य समाचार 55

कुछ फूल कुछ कांटे 59

विज्ञान कविता 59

वार्षिक प्रतिवेदन 60

पिछले अंकों की अनुक्रमणिका 64

सदस्यता आवेदन पत्र (प्रारूप)

अध्यक्ष,
हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई 400 085.

प्रिय महोदय,
मैं, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केन्द्र, बम्बई) का आजीवन/साधारण सदस्य बनने का इच्छुक हूं । मेरा निजी विवरण निम्नलिखित हैं। मैं सदस्यता शुल्क साथ भेज रहा हूं । कृपया मुझे परिषद का आजीवन/साधारण सदस्य बनाने का कष्ट करें ।

नाम : _____ आयु : _____

पता-कार्यालय : _____ पता-निवास : _____

_____ _____

व्यवसाय : _____ _____

हिन्दी की पात्रता : _____ प्रवीणता _____

(Qualification) _____ (Specialisation): _____

विशेष रुचि : _____ हस्ताक्षर : _____

अन्य विवरण : _____ दिनांक : _____

* शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल ऑर्डर द्वारा ही भेजें ।

संपादकीय

राष्ट्र की प्रौद्योगिकी नीति को नया मोड़ आवश्यक

तकनीकी संस्कृति के विकास एवं स्वदेशी तकनीकों के संबंध में पिछले कुछ अंकों में चर्चा की गयी है। विज्ञान एवं तकनीकी विकास तभी सार्थक माना जाता है जब ये राष्ट्र के अधिकाधिक जन समुदाय को सामाजिक / सांस्कृतिक एवं आर्थिक मापदण्डों पर बेहतर जीवन देने में सक्षम बन पाएं। यदि मौलिक तौर पर देखा जाय तो किसी भी राष्ट्र की प्रौद्योगिकी वहां उपलब्ध कच्चे माल तथा संपत्ति के प्रभावी उपयोग पर निर्भर करती है। उल्लेखनीय है कि कच्चे माल या संपत्ति की कमी को भी अधिकाधिक विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकियों के विकास से पूरा किया जा सकता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी कोई ऐसे विषय नही हैं जिन्हें गोपनीयता की दृष्टि से देखा जाये। गोपनीयता की आढ़ में कार्य का औचित्य एवं उत्तरदायित्वता का पक्ष गौण बन जाता है और जन साधारण में जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण जागृत करने का परम ध्येय होना चाहिए हम उसमें असफल हो जाते हैं।

स्वाधीनता के लगभग दस वर्षों बाद भारत सरकार ने मार्च 1958 में देश की विज्ञान नीति की आधार शिला रखी थी जिसका उद्देश्य राष्ट्र की समृद्धता के लिए विज्ञान एवं तकनीकी को समुचित प्रोत्साहन देना था । इसके कुछ आधारभूत लक्ष्य थे: विज्ञान एवं वैज्ञानिक शोध (चाहे वे मौलिक, अनुप्रयुक्त या शैक्षणिक ही क्यों न हों) को राष्ट्र की शक्ति के एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में मान्यता देना, वैज्ञानिक एवं तकनीकी मानव शक्ति के कार्यक्रमों को हर संभव प्रोत्साहित करना ताकि राष्ट्र की कृषि, उद्योग प्रतिरक्षा एवं शिक्षण की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें। यह सुनिश्चित करना कि पुरुष एवं महिलाओं दोनों की सर्जनात्मक प्रतिभा को पूर्ण प्रोत्साहन मिले। व्यक्तिगत तौर पर भी ज्ञानार्जन एवं प्रसार तथा नवीन ज्ञान की खोज के प्रयासों को शैक्षणिक (अकादमिक) स्वतंत्रता मिले। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिकों को लिए अच्छी सेवा शर्तें, वातावरण, यहां तक कि वैज्ञानिक नीतियों के निर्धारण में उनकी भागीदारी का भी प्रावधान रखा गया था।

बिना प्रौद्योगिकी विकास के विज्ञान का व्यवहारिक पक्ष अधूरा ही रहता है। अत: प्रौद्योगिकी नीति को भी अपनाया गया। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं एवं संसाधनों के अनुकूल स्वदेशी तकनीकों का विकास, आयातित तकनीकों का दक्षतापूर्ण अवशोषण तथा अनुकूलन, स्ट्रेटैजिक एवं क्रांतिक क्षेत्रों में राष्ट्र में उपलब्ध अधिकाधिक संसाधनों द्वारा तकनीकी सक्षमता एवं स्वावलम्बन प्राप्त करना, परम्परागत शिल्प एवं क्षमताओं का विकास तथा उन्हें व्यवसायिक स्तर प्रदान करना आदि पहलुओं को मान्यता दी गयी। समय समय पर प्रौद्योगिकी एवं उपकरणों के आधुनिकीकरण, पारिस्थितिकी संतुलन एवं संरक्षण, अनवीनीकृत स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा की खपत में पूर्णत: मितव्ययता इत्यादि पक्षों पर भी ध्यान दिया गया। इन नीतियों को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने की दृष्टि से, 1975 में विज्ञान एवं तकनीकी समिति के आधीन किया गया। इससे पहले 1971 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना की गयी तथा उसके बाद इन्हें प्रो. ए. रहमान ने अपने एक शोध पत्र में यह बताया कि हालांकि प्रौद्योगिकी अवरचना एवं मानव शक्ति के विकास की आधारभूत फिलासॉफी सही थी परंतु इसमें जो कमी देखी गयी वह थी जन साधारण में वैज्ञानिक दृष्टिकोण जागृत करने से संबंधित सुविचारित एवं निश्चित नीति का न होना। सदियों से चले आ रहे उपनिवेशवाद एवं अंग्रेजी सरकार की शिक्षा नीतियों से प्रभावित देश में पनप रही सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रकृति (ethos) तथा परिवेश से बाहर आने की जड़ता (inertia) ने भी देश के प्रौद्योगिकी विकास में व्यवधान डाला है। देश के वैज्ञानिकों में संस्थानों के स्थापन अधिक रुचि और शोध परियोजनाओं में अपनी व्यस्तता बनाए रखने के कारण भी मूल उद्देश्यों में विचलन आया।

इस संबंध ने श्रीमती इंदिरा गांधी ने वाल्टिर में आयोजित राष्ट्रीय विज्ञान काँग्रेस की वार्षिक

बैठक में देश में वैज्ञानिक मन:स्थिति (Temper) का वातावरण तैयार करने हेतु राजनैतिक, सामाजिक ताकतों के साथ साथ वैज्ञानिकों को भी इशारा किया परन्तु दुर्भाग्यवश न तो राजनैतिक, न ही सामाजिक ताकतों ने कोई ठोस कदम उठाए और वैज्ञानिक भी अपने व्यक्तिगत कारणों से इस कार्य हेतु आकर्षित नही हुए। उन्हें सामाजिक ताकतों से संघर्ष एवं अपने भविष्य (महत्वकांक्षाओं) प्रभावित होने का भय लगा रहा।

हमारे विज्ञान एवं तकनीकी विकास कार्यक्रमों की एक सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि ये कुछ राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों तक ही सीमित रहीं। वर्तमान आंकड़ों के अनुसार भारत में केवल 10 प्रतिशत शोध और विकास कार्य औद्योगिक संस्थानों में होती है जब कि जापान में लगभग 80 प्रतिशत शोध-विकास कार्य निजी क्षेत्रों के उपक्रमों द्वारा प्रोत्साहित की जाती है।

देश में होने वाले राजनैतिक - आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नीतियों में बदलाव सामयिक लगता है। समय समय पर मूलभूत नीतियों की समीक्षा कर उन्हें सही दिशा देना विकास प्रक्रिया का ही एक चरण हैं। बताया जाता है कि नीति में वांछित परिवर्तनों हेतु विज्ञान एवं तकनीकी विभाग को लगभग 3000 महत्वपूर्ण सुझाव प्राप्त हुए हैं। उनमें सबसे प्रथम व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों द्वारा विज्ञान एवं तकनीकी विकास कार्यों को महत्ता देना तथा राष्ट्रीय संपत्ति एवं समृद्धि में प्रौद्योगिकी की भूमिका स्वीकारना है। सुझावों के अंतर्गत इस बात पर विशेष बल दिया गया कि प्रशासनिक प्रक्रिया को सरल किया जाय ताकि कम से कम समय में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगविद् अपनी अभिनव क्षमताओं को कार्य रूप दे सकें। सरकारी संस्थानों द्वारा लगाए अंकुशों तथा फैल रही उदासीनता के कारण हर कार्य में अनावश्यक विलम्ब बढ़ता जा रहा है। नयी नीति के अंतर्गत ऊर्जा, संसाधनों का संरक्षण, प्राकृतिक स्रोतों की मैपिंग, प्राकृतिक खतरों से बचाव, कृषि तथा कृषि आधारित उद्योग, स्वास्थ्य सेवाएं इत्यादि प्रमुख रखे जाने की संभावना है। पैट्रोलियम पदार्थ एवं संबंधित पदार्थों के लिए आवश्यक अवरचना तैयार करना भी इस नीति का ही अंग है।

अब तक दुर्भाग्य से देश के अधिकांश उद्योगपति अधिकाधिक लाभ उठाने की प्रबल इच्छा के कारण प्रौद्योगिकी शोध एवं विकास को अधिक महत्व नही देते रहे है। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों में विकसित प्रौद्योगिकियों को उद्योगों द्वारा अपनाए जाने में अपनी कठिनाइयां रही है क्योंकि दोनों जगहों के कर्मियों का दृष्टिकोण, परिवेश तथा प्राथमिकताएं अलग अलग होती हैं। अब समय आ गया है जब हमें स्वदेशी/आयातित तकनीकों को मार्केट उन्मुक्त बनाना है। व्यय और उपलब्धि के बीच एक सकारात्मक संबंध स्थापित करना है। एक विचार से भारतीय उद्योगपतियों को ऐसे साधन/सुविधाएं एवं रियायतें दी जा सकती है जिससे वे अनुसंधान एवं तकनीकी विकास पर अधिकाधिक संपत्ति लगाने के लिए प्रेरित हों। देश में उपलब्ध माल एवं उन्नत तकनीकों जिन्हें निरंतर शोध एवं विकास द्वारा सक्षम एवं दक्ष बनाया गया हो, के उपयोग से अंतर्राष्ट्रीय स्तर (गुणता एवं दाम में) का माल बनाने का ध्येय निश्चित करना होगा। सारे संसार में चल रही अंतर्राष्ट्रीय मार्केट की लहर तथा भारत सरकार की 1991 की उदार औद्योगिक नीति को एक महत्वपूर्ण परिवर्तन कहा जा सकता है। परंतु इनके वांछित परिणाम तभी मिल सकते हैं जब हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को भूल कर राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता दें।

इसमें संदेह नही कि 1958 में बनायी विज्ञान नीति एवं चार दशकों की योजनाओं के फलस्वरूप आज देश में एक उच्च कोटि का कृषि एवं औद्योगिक आधार तथा एवं बड़ा प्रशिक्षित वैज्ञानिक मानव संसाधन तैयार हो गया है परंतु वैज्ञानिक-तकनीकी एवं शिक्षण संस्थानों में व्याप्त उदासीनता का वातावरण काफी चिंताजनक है। इसके कारण वैयक्तिगत एवं समाजिक दोनो हो सकते है जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल एवं हरिओम मित्तल

सिन्क्रोट्रान विकिरण : एक विलक्षण प्रकाश स्रोत

ए.पी. मिश्र
वर्ण क्रम दर्शिकी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई 400 085

लेसर तथा सिन्क्रोट्रान विकिरण इस शताब्दी के दो अनोखे प्रकाश स्रोत है। लेसर प्रकाश कई अर्थों में सिक्रोट्रान से श्रेष्ठकर है किन्तु इसकी उपलब्धता 1000 आंगस्ट्राम से कम की तरंग दैर्ध्यों के लिए संभव नही हो पायी है। वर्णक्रम के इस भाग के लिए सिन्क्रोट्रान विकिरण एक अद्वितीय प्रकाश स्रोत है। इसकी खोज से अनेक नयी जानकारी प्राप्त की जा चुकी हैं। भविष्य में सिन्क्रोट्रान एक्स किरण लीथोग्राफी द्वारा एकीकृत परिपथों के औद्योगिक उत्पादन तथा एंजियोग्राफी जैसे कार्यो में इसकी काफी अधिक संभावनाएं है। प्रस्तुत लेख में इस महत्वपूर्ण विविरण के विभिन्न पहलुओं पर प्रारंभिक जानकारी दी गयी है।

शुरू शुरू में सिन्क्रोट्रान विकिरण त्वरित्र भौतिकी में एक तकनीकी समस्या के रूप में सामने आया था, किन्तु आज यह एक बहुचर्चित एवं अत्यन्त उपयोगी प्रकाश स्रोत बन चुका है। इसका भौतिकी, रसायनिकी, जीव-विज्ञान, द्रव्य-विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा चिकित्सा के क्षेत्र में अधिकाधिक उपयोगी किया जा रहा है। निकट भविष्य में बहुत सम्भावना है कि एकीकृत परिपथों का औद्योगिक उत्पादन सिन्क्रोटॉन विकिरण एक्स-किरण अश्ममुद्रण (लिथोग्राफी) पर पूर्णतः निर्भर होगा। यह विकिरण रोगियों के लिए एंजियोग्राफी परिक्षण (कारडिओ वैस्कुलर रोग का पता करने के लिए) के भी उपयोग में लाया जा सकता है।

सिन्क्रोट्रान विकिरण क्या है? : इलेक्ट्रॉन या पॉज़िट्रॉन के वक्र पथ पर लगभग प्रकाश के वेग से (सापेक्ष वेग) भ्रमण करने पर विद्युत चुम्बकीय विकिरण उत्सर्जित होता है। इसे सिन्क्रिट्रान विकिरण कहा जाता है। यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि वक्रीय पथ की त्रिज्या इतनी होनी चाहिए जिससे कि क्वाण्टम प्रभाव नगण्य हो जाय। यह शर्त इलेक्ट्रॉन/पाज़िट्रॉन के उन त्वरित्रों के लिए विशेषतः लागू होती है जिनमें ये कण चक्रीय पथ में घूमते हैं। यह विकिरण सर्व प्रथम 1964 में अमरीका स्थित शनेक्टडी के एक विशेष त्वरित्र 'जनरल इलेक्ट्रिक सिन्क्रोट्रान' में देखा गया। इसी कारण इस विकिरण का नाम सिन्क्रोट्रान विकिरण पड़ा। किन्तु अब यह नाम किसी भी इलेक्ट्रॉन/पाजिट्रान के संवृत्त-कक्ष त्वरित्रों, विशेषतः इलेक्ट्रॉन संग्रह-वलय (स्टोरेज रिंग) से निकलने वाले विकिरण के लिए प्रयुक्त होता है।

इस शताब्दी के चौथे दशक के प्रारम्भ तक यह विकिरण बीटाट्रॉन जैसे त्वरित्रों से प्राप्त किये जाने वाले इलेक्ट्रॉन की अधिकतम ऊर्जा को सीमित रखने में मुख्य कारक समझा जाता था। सिन्क्रोट्रॉन विकिरण का सैद्धान्तिक विवेचन मुख्य रूप से श्विंगर, इवानेन्को, सोलोकोव और तिर्नोव ने दिये। पाँचवे दशक के अन्त तक इस विकिरण का अध्ययन मुख्यतः त्वरित्र भौतिक में इसकी नकारात्मक भूमिका से प्रेरित था। किन्तु टोम्बोलियन और हर्टमैन ने जब इस विकिरण को पहली बार वर्ष 1956 में अति पराबैंगनी/मृदु एक्स-किरण अवशोषण वर्णक्रममापी में उपयोग किया तो यह विकिरण केवल तकनीकी कण्टक बनकर ही नहीं, बल्कि अनुसंधान कार्यों के लिए भी एक उपयोगी स्रोत समझा जाने लगा। इस तरह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक नया क्रान्तिकारी अध्याय

शुरू हुआ। इस विकिरण की अद्वितीय विशेषताएँ विज्ञान, चिकित्सा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इसके महत्व को सिद्ध करती हैं। इन विशेषताओं की चर्चा विस्तार से आगे की जायेगी।

इलेक्ट्रॉन/पाज़िट्रॉन संग्रह-वलय : प्रारम्भ में सिन्क्रोट्रान विकिरण इतना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता था जिसके उत्पादन के लिए इलेक्ट्रॉन त्वरित्र बनाए जायें। यह विकिरण मौलिक-कण-अनुसंधान के लिए बनाये गऐ त्वरित्रों का उपोत्पाद था। इन त्वरित्रों के पैरामीटर (प्राचल) मौलिक कण प्रयोगों के अनुकूल रखे जाते थे। यह सिन्क्रोट्रान विकिरण अनुप्रयोगों के लिए अनुपयुक्त था। इन त्वरित्रों में इलेक्ट्रॉन पुंज का क्षय हो जाता था। जिससे सिन्क्रोट्रॉन विकिरण की तीव्रता तेजी से घटती थी। किन्तु इस विकिरण के बढ़ते हुए महत्त्व को देखकर इसके लिए समर्पित इलेक्ट्रॉन संग्रह-वलय बनाये जाने लगे। एक संग्रह वलय में इलेक्ट्रॉन/पॉज़िस्ट्रॉन सापेक्ष वेग मे निर्वात (दाब 10^{-10} टॉर) में कई घंटे तक सिन्क्रोट्रॉन विकिरण उत्सर्जित करते हुए घूम सकते हैं। इलेक्ट्रॉन पुंज की क्षय दर इतनी कम होती है कि उत्सर्जित सिन्क्रोट्रान विकिरण की तीव्रता लगभग सभी प्रयोगों के समय के लिए स्थिर मानी जा सकती है। एक सामान्य संग्रह-वलय चित्र-1 में दिखाया गया है। चित्र में IS इलेक्ट्रॉन/पॉज़िट्रॉन का उत्पादन करता है, इन्हें त्वरित करता है, तत्पश्चात संग्रह वलय में प्रक्षेपित करता है। इसे प्रक्षेपण यन्त्र कहा जाता है। यह विकिरण विभिन्न किरण पुंजों (L) द्वारा उपयोग में लाया जाता है।

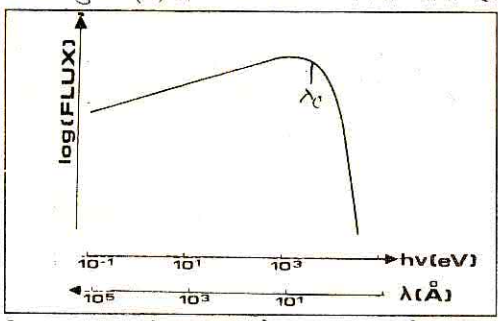

चित्र-1. एक प्रतीकात्मक इलेक्ट्रान / पाजिट्रोन संग्रह वलय, IS - प्रक्षेपण यंत्र RF- रेडियो आवृति क़ेविटी, L- विभिन्न किरण पुंज।

विभिन्न क्षेत्रों में सिन्क्रोट्रॉन विकिरण की उपयोगिता को बढ़ाने के लिए चालू मशीनों में सतत परिवर्तन आवश्यक महसूस किया गया। इसी क्रम में उच्च ऊर्जा संग्रह-वलय का विकास किया गया और आज पूरे विश्व में लगभग पचास मशीनें मेगावोल्ट से गीगावोल्ट तक के ऊर्जा परिसर में चालू अथवा निर्माणधीन हैं। सातवें दशक के अन्त तक केवल 'नमन (बेन्डिंग) चुम्बक' सिन्क्रोट्रॉन विकिरण (सापेक्ष वेग के इलेक्ट्रॉन के पथ को द्वि ध्रुवीय नमन चुम्बक द्वारा मोड़ने से उत्सर्जित विकिरण) उपयोग में लाया जाता था। किन्तु इस प्रकार से उत्पन्न सिन्क्रोट्रॉन विकिरण सभी प्रकार के अनुप्रयोगों को लिए ठीक नहीं होता। एक विकल्प के रूप में संग्रह-वलय के ऋजु भाग में आवर्ती चुम्बकों के विन्यास को सन्निविष्ट करके बहुत ही रोचक विशेषतायुक्त विकिरण प्राप्त किया जा रहा है। सन्निविष्ट आवर्ती चुम्बकों के विन्यास को सन्निवेश यन्त्र कहते हैं। इस विधि में आवर्ती चुम्बकों का विन्यास इलेक्ट्रानों/पॉजिट्रॉनों को, जो इसके प्रभाव के आभाव मे सरल रेखीव गति में होते हैं, प्रदोलित करता है। इन दोलनों के आकार के आधार पर सन्निवेश यन्त्र को 'विग्लर' या 'अन्डुलेटर' कहते हैं।

सिन्क्रोट्रॉन विकिरण के अभिलक्षण : नमन चुम्बक से उत्पन्न सिन्क्रोट्रॉन विकिरण अधिकाधिक उपयोग में लाया जाता है। इस विकिरण की निम्नलिखित विशेषताओं इसके महत्त्व को दर्शाती हैं :-

(i) **वर्णक्रम वितरण** : इस विकिरण में सूक्ष्म तरंग से लेकर कठोर एक्स-किरण और गामा किरण तक (इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा पर आधारित) सतत वर्णक्रम पाया जाता है। एक सामान्य सिन्क्रोट्रॉन विकिरण स्रोत से उत्सर्जित वर्णक्रम को चित्र-2 में दिखाया गया हैं। तरंगदैर्ध्य 10^{-} से 10^{-} तक के परिसर में तथा इन फोटानों की ऊर्जा कुछ इलेक्ट्रॉन वोल्ट से 10^{5} इलेक्ट्रॉन वोल्ट के परिसर में है। परमाणुओं, अणुओं और प्रोटीनों के आकार, रासायनिक बन्ध-दूरी तथा मणिभों में परमाण्वीय तलों की दूरी उपर्युक्त

तरंग दैर्ध्य परिसर में और इलेक्ट्रानों की परमाणु, अणु, ठोस या जैविक निकायों में बन्ध ऊर्जा भी सिन्क्रोट्रॉन विकिरण स्रोत से उत्सर्जित फोटॉन ऊर्जा परिसर में आते हैं। इस प्रकार इन फोटानों की ऊर्जा और तरंग दैर्ध्य ठोसों, अणुओं और महत्त्वपूर्ण जैविक संरचनाओं के अध्ययन के लिए उपयुक्त हैं। सिन्क्रोट्रान विकिरण वर्णक्रम के लिए एक उपयोगी प्राचल है जिसे स्रोत (मशीन) का अभिलाक्षणिक तरंगदैर्ध्य कहते हैं:

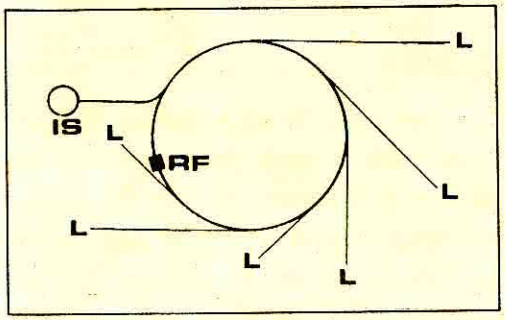

चित्र-2. एक सामान्य सिन्कोट्रोन विकिरण स्रोत से उत्सर्जित विकिरणो का वर्ण क्रम विकिरण c स्रोत का अभिलक्षणिक तरंग दैर्ध्य।

$$\lambda_c\,(\text{Å}) = \frac{5.59 \quad \rho\,(m)}{E^3\,(GeV)}$$

यहाँ ρ नमन चुम्बक का वक्रीय त्रिज्या मीटर (m) में तथा E इलेक्ट्रान की ऊर्जा गीगावोल्ट (GeV) में है।

(ii) **अति तीव्रता** : चित्र-2 में तीव्रता को फोटान फ्लक्स N(x) के रूप में प्रदर्शित किया गया है। प्रायः N(x) एक पारम्परिक मात्रक फोटान प्रति सेकेण्ड प्रति मिली रेडियन क्षैतिज अपसार तथा 0.1% आंशिक बैण्ड प्रसार में व्यक्त किया जाता है। एक सामान्य संग्रह वलय के लिए इसका मान उपयोगी तरंग दैर्ध्यो के लिए 10 से 10 के बीच बदलता है। यह तीव्रता किसी पारम्परिक प्रायोगिक स्रोत (लेसर को छोडकर) से बहुत अधिक है। उपर्युक्त मात्रक में

$$N(\lambda) = 2.457 \times 10^{13}\, E\,(GeV)\, I(A)\, G_1(y)$$

जहाँ $y = \frac{\lambda_c}{\lambda}$ और,

$$G_1(y) = y \int_y^{\infty} K_{5/3}(x)\, dx$$

यहाँ K द्वितीय प्रकार का परिवर्धित बेसेल फलन है तथा I संग्रह वलय में इलेक्ट्रान/पॉज़िट्रॉन पुंज की विद्युत धारा एम्पीयर (A) में है। चित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम तीव्रता तरंगदैध्य के निकट प्राप्त होती है। तरंग दैर्ध्ये के लिए तीव्रता धीरे धीरे घटती है जबकि तरंगदैर्ध्यो के लिए यह बहुत तेजी से (चर - घातांकीय) कम होती है। तब भी मोटे तौर पर तरंगदैर्ध्य तक तीव्रता ज्यादातर उपयोगों के लिए पर्याप्त होती है।

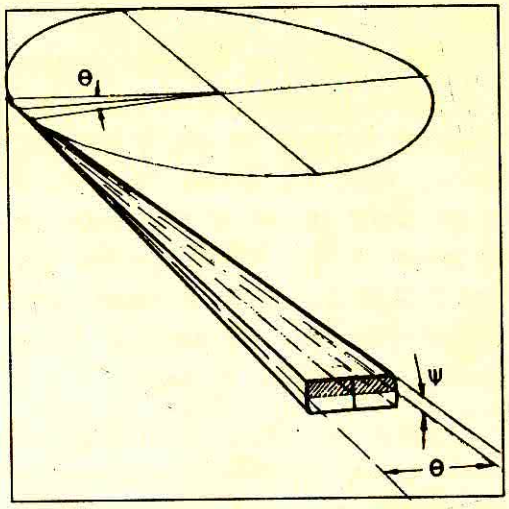

चित्र - 3 सिन्क्रोट्रोन विकिरण उत्सर्जन की ज्यामिति। क्षेतिज तल में अपसार तथा उर्ध्वतल अपसार।

(III) **समान्तरण** : इस विकिरण का उत्सर्जन ऊर्ध्वतल में (इलेक्ट्रान कक्षा की तल को क्षैतिज मानते हुए) बहुत ही संकीर्ण शंकु (कोन) में परिसीमित होता है। इस उत्सर्जन को चित्र 3 में दिखाया गया है ज्यादातर तीव्रता लगभग 1 मिलीरेडियम के कोन में पाई जाती है।इसके प्रसार को निम्न सूत्रों द्वारा व्यक्त किया जाता है:

$$\Delta\psi \approx \frac{2}{\gamma}\left(\frac{\lambda}{\lambda_c}\right)^{1/3}, \quad (\lambda >> \lambda_c \text{ के लिए})$$

$$\Delta\psi \approx \frac{2}{\gamma}\left(\frac{\lambda}{3\lambda_c}\right)^{1/2}, \quad (\lambda << \lambda_c \text{ के लिए})$$

जहाँ = E एक विमाहीन (डाइमेन्सनलेस) राशि है। यहाँ पर E इलेक्ट्रॉन की विश्रांत ऊर्जा है।

(शेष पृष्ठ 58 पर)

तमसो मा ज्योतिर्गमय: प्रकाश का वैज्ञानिक सफर

राजेन्द्र कुमार राय
डी-690, सरस्वती विहार,
दिल्ली-110034

हमारे देश में दीपावली अंधकार पर प्रकाश की विजय का पर्व है। दुनिया के कई और देशों में भी उजाले का पर्व अलग-अलग रूपों में मनाया जाता है। पर्वो पर किए जाने वाले इस प्रकाश के प्रतीकात्मक अर्थ चाहे जितने भी हों, उसका अपना भी एक इतिहास है ।

मानव की, सभ्यता के प्रदुर्भाव के समय से ही अंधकार से प्रकाश ओर बढ़ने की शाश्वत लालसा रही है। प्रकाश हमें सृष्टि में किसी वस्तु का रंग, आकार एवं सापेक्षिक स्थिति दर्शाता है। सूर्य प्रकाश के रूप में प्राप्त ज्योति पुँज की सहायता से सुदूर अंतरिक्षी शून्य एवं सूक्ष्म जगत में अपनी पैठ पाने के लिये मानव प्रकाश का सदा कृतज्ञ रहेगा। सूर्य प्रकाश के रूप में उत्सर्जित ऊर्जा, आखिर हैं क्या?

प्रकाश के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की मान्यताएं लगातार बदलती रही हैं। यूनानी दार्शनिक और गणितज्ञ पाइथागोरस के अनुसार वस्तुओं से प्रकाश के कण प्रसारित होते हैं, जबकि अरस्तू का विचार था कि वस्तुओं से निकला हुआ प्रकाश एक विशिष्ट माध्यम द्वारा आंखों तक पहुंचता है जो हमें दिखाई देता है। यूनानी विचारक और प्रसिद्ध ज्यामितिकार यूक्लिड तथा अधिकांश प्राचीन भारतीय विचारकों के अनुसार, प्रकाश के तंतु आंखों से निकलकर वस्तुओं तक पहुंचते हैं तभी वे हमें दिखाई देती हैं। हालांकि ये सारे विचार गलत थे, लेकिन सत्रहवीं शताब्दी तक यही मान्यताएं प्रचलित रही। सत्रहवीं शताब्दी मध्यकाल तक वैज्ञानिकों के पास इसका कोई उत्तर नहीं था कि वस्तुतः प्रकाश है क्या और इसका रंग क्या है? यद्यपि तब तक लेंस और प्रकाश के बारे में थोड़ी जानकारी वैज्ञानिकों को प्राप्त हो गई थी, जैसे कि प्रकाश के परावर्तन और अपवर्तन के नियम और प्रकाश सीधी रेखा में चलता है, आदि।

जब इटली के महान वैज्ञानिक गैलीलियो ने अपने हाथों से बनाई दूरबीन से अंतरिक्ष की ओर देखा तो वे आश्चर्य चकित रह गए। आकाश में गेलीलियो ने इतनी बड़ी दुनिया देखी जिसकी कि वे कल्पना तक नहीं कर सकते थे। गैलीलियो के अंतरिक्ष विज्ञान के करीब पचास वर्ष बाद हॉलैण्ड के लेवेनहुक ने अपने बनाए सूक्ष्मदर्शी में पानी की बूंद को देखा और एक आश्चर्यजनक समूचा 'सूक्ष्म-जगत' ही खोज डाला।

लेकिन प्रकाश के इतिहास में सबसे क्रांतिकारी खोज का श्रेय आइजेक न्यूटन को जाता है। सन् 1666 में न्यूटन ने एक प्रिज्म में से सफेद प्रकाश की किरण पुंज को गुजारा। यह क्या? प्रिज्म में से जो प्रकाश बाहर निकला वह पहले की तरह सफेद नहीं था। वह कई रंगों में विभाजित अपनी छटा बिखेरे था। प्रत्येक रंग का प्रकाश अलग-अलग कोणों से मुड़ा था। बैंगनी प्रकाश सबसे ज्यादा मुड़ा हुआ था और लाल सबसे कम। सन् 1672 में न्यूटन ने यह स्पष्ट किया कि किसी भी वस्तु का रंग उस प्रकाश के कारण होता है जिससे वह दिखाई देती है। जैसे कोई वस्तु हरी या पीली दिखाई दे रही है तो उसका अर्थ है कि उस वस्तु की सतह वर्णक्रमपट (स्पैक्ट्रम) के हरे या पीले रंग को तो परावर्तित कर रही है, मगर बाकी रंगों को अपने अंदर सोख रही है। सन् 1704

में न्यूटन का एक ग्रंथ ''आप्टिक्स'' प्रकाशित हुआ। इसमें न्यूटन ने लिखा कि प्रकाश सूक्ष्म कणिकाओं से बना है।

न्यूटन के बाद लगभग दो सदी तक प्रकाश के बारे में दो सिद्धान्त प्रचलित रहे। ''तरंग सिद्धान्त'' और ''कणिका सिद्धान्त''। इसी दौरान प्रकाश का वेग जानने की कोशिश में सबसे पहले सफलता मिली डेनमार्क के खगोल वैज्ञानिक ए. रोमर को। सन् 1776 में रोमर ने बृहस्पति ग्रह के एक चंद्रमा को लगने वाले ग्रहण के उपयोग से प्रकाश का वेग प्रति सेकंड 2,15,000 किलोमीटर प्राप्त किया। आधुनिक मापों के अनुसार निर्वात में प्रकाश का वेग 2,99,792 किलोमीटर प्रति सेकंड है, जो स्रोत के वेग पर निर्भर नहीं करता।

सन् 1865 में पहली बार मैक्सवेल इस परिणाम पर पहुंचें कि प्रकाश एक विद्युत चुंबकीय तरंग है। मैक्सवेल ने विद्युत-चुंबकीय तरंगों के प्रसारण के लिए जो समीकरण तैयार किए वे ऊष्मा व प्रकाश दोनों के प्रसारण को स्पष्ट करते हैं। विद्युत चुंबकीय तरंगों की अन्य किस्में हैं। दीर्घ विद्युत तरंगें, मानक रेडिओ प्रसारण बैण्ड, लघु रेडिओ तरंगें, टेलीविजन और रडार बैण्ड, अवरक्त किरणें, पराबैगनी किरणें, एक्स-रे, गामा किरणें और कास्मिक यानी अंतरिक्ष किरणें सभी अदृश्य किरणें हैं। दीर्घ विद्युत तरंगों की लंबाइयां 2.5×10^{5} मीटर (लगभग 160 मील) और कास्मिक किरणों के तरंग दैर्ध्य 1.25×10^{15} मीटर हो सकती हैं। दृश्य प्रकाश किरणों का बैण्ड अवरक्त किरणों (तरंग दैर्ध्य लगभग 7.5×10^{-7} मीटर) तथा परा बैगनी किरणों (तरंग दैर्ध्य लगभग 3.8×10^{-7} मीटर) के बीच होती हैं।

दृश्य प्रकाश किरणों के बैण्ड के अंदर भी अलग-अलग तरंग दैर्ध्य की किरणें हैं जिन्हें हमारी आंखें रंगों के रूप में देख पाती हैं। प्रत्येक तरंगदैर्ध्य का अपना विशिष्ट रंग होता है। मैक्सवेल के इस सिद्धान्त ने प्रकृति में प्रकाश की स्वतंत्र सत्ता को समाप्त कर दिया। प्रकाश विद्युत-चुंबकत्व की बुनियादी घटना का एक अंग बन गया।

न्यूटन का मानना था कि प्रकाश छोटे-छोटे कणों का बना है जिन्हे ''कणिका'' कहते है। इसके विपरीत, न्यूटन के एक समकालीन हाइजेन्स के मतानुसार प्रकाश तरंगों से बना हुआ था । दोनों वैज्ञानिकों के अपने अनुयायी थे लेकिन 1801 तक ''कणिका सिद्धान्त'' को व्यापक मान्यता प्राप्त थी। उसी वर्ष टॉमस यंग ने प्रदर्शित किया कि प्रकाश किरणें तरंगों में चलती हैं और वर्ण तरंग दैर्ध्य पर निर्भर है।

प्रकाश किरणों के विवर्तन से भी प्रकाश की तरंग-प्रकृति का पता चलता है। जब कभी प्रकाश के मार्ग में कोई बाधा आ जाती है या वह किसी छोटे छेद के भीतर या पास से गुजरता है तो उसका आसानी से वंकन होता है। इसी को ''विवर्तन'' कहते है। परन्तु बीसवीं सदी के प्रारंभ होते-होते तरंग सिद्धान्त के सामने कठिनाइयाँ आ खड़ी हुईं। बीसवी सदी के एक महान भौतिकशास्त्री मैक्स प्लाँक ने इस द्वन्द को दूर करते हुए अपना विख्यात ''क्वांटम सिद्धान्त'' प्रतिपादित किया।

मैक्स प्लाँक के अनुसार, तापित वस्तुएँ प्रकाश का विमोचन छोटे-छोटे पृथक कणों के रूप करती हैं। इन कणों को ''क्वांटम'' का नाम दिया गया। सन् 1905 में आईंस्टाइन ने सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि प्रकाश की इकाई एक कण है। आईंस्टाइन के प्रकाश-क्वांटम को ''फोटान'' कण का नाम दिया गया। अक्सर क्वांटम के लिए फोटान और फोटान के लिए क्वांटम का उपयोग किया जाता है। प्लाँक सिद्धान्त के अनुसार, उत्सर्जित क्वांटमों की संख्या का पता प्रकाश की मात्रा से चलता है। क्वांटमों

के आकार का निर्धारण तरंग दैर्ध्य से होता है। मोमबत्ती एक सेकंड में 10 खरब क्वांटम उत्सर्जित करती है।

आईंस्टाइन द्वारा निरूपित सापेक्षिकता सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष है द्रव्यमान (m) तथा ऊर्जा (E) का सम्बन्ध । इसके अनुसार ऊर्जा प्रत्येक वस्तु में छिपी रहती है जो द्रव्यमान की अनुरूपी होती है "$E=mc^2$; c = प्रकाश का वेग । यह सूत्र आज अनेक भौतिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक होता है । इसकी सहायता से परमाणु नाभिक तथा नाभिकीय प्रतिक्रिया की ऊर्जा का कलन होता है ।

लेकिन इस समय तक प्रकाश का स्वरूप अभी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि प्रकाश के फोटान कण कहाँ और कैसे पैदा होते हैं। इन सवालों का समाधान खोजा डेनमार्क के प्रख्यात भौतिकविद् नील्स बोर ने। बोर ने अलग-अलग परमाणु का विकिरण स्पष्ट करने का निर्णय किया। किसी ठोस पिंड में परमाणु बहुत अधिक शक्ति से प्रतिक्रिया करते हैं और इसीलिए उनका विकिरण सतत् स्पेक्ट्रम बनाता हैं। यह विकिरण इस बात पर निर्भर नही करता कि ठोस पिंड किस प्रकार के परमाणुओं से बना है, जैसे भीड़ के शोर-गुल में अलग-अलग व्यक्तियों की आवाज में फर्क करना संभव नहीं होता, उसी प्रकार ठोस पिंड में भी परमाणु अपनी विशेषताएं खो बैठते हैं।

नील्स बोर के परमाणु सन् 1913 में प्रस्तुत मॉडल के अनुसार परमाणु के केन्द्र में एक नाभिक और उसके चारों तरफ अलग-अलग कक्षाओं में इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं। परमाणु के अंदर इलेक्ट्रान अपनी स्थाई कक्षा से दूसरी कक्षा में पहुंचता है तो वह फोटान कण को बाहर फेंक देता है । यह क्रिया बराबर जारी रहती है। लेकिन इलेक्ट्रान पुनः अपनी कक्षा में लौट आते हैं। इस क्रिया के दौरान जो फोटान कण बाहर निकलते हैं हमारी आंखों में पहुंचते हैं और तब हमें कोई भी वस्तु दिखाई देती है।

प्रकाश का दोहरा स्वरूप आज भी कायम है । प्रकाश का तरंग और क्वांटम सिद्धान्त दोनों मान्य हैं । प्रकाश के वर्तमान स्वरूप को समझने में आधुनिक भारत के वैज्ञानिकों सत्येन्द्रनाथ बोस और सर सी.वी. रामन का पर्याप्त योगदान है। फोटान को समझने में सत्येन्द्र नाथ बोस द्वारा प्रतिपादित बोस-आईंस्टीन सांख्यिकी और सर सी.वी. रामन द्वारा प्रतिपादित ''रामन प्रभाव'' का काफी योगदान है। रामन प्रभाव से हमें हजारों वस्तुओं की आणविक रचना को समझने में मदद मिली है।

बीसवीं सदी में प्रकाश के एक नए रूप को समझने में सफलता मिली। सन् 1960 में एक अमेरिकी वैज्ञानिक टी.एच. मेनन ने ''लेसर'' का सर्वप्रथम निर्माण किया। लेसर वास्तव में ऊर्जा रूपांतरण का एक ऐसा तरीका है, जिसमें विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा या विद्युत ऊर्जा को विशेष गुणों वाली विद्युत-चुंबकीय किरणों में बदला जाता है। किसी भी स्रोत से निकलने वाली लेसर किरण में एक वर्णता, संबद्धता, दिशात्मकता और उच्च तीव्रता का गुण होता है। दरअसल लेसर एक प्रशिक्षित सैनिक की तरह काम करती हैं। आज लेसर का उपयोग शल्यक्रिया, 3-डी फोटोग्राफी, धातुओं को जोड़ना या छेद करना, मौसम का हाल जानना, संचार और युद्ध के मैदान तक हो रहा है। आप्टिकल फाइबर प्रकाश तंतु के द्वारा प्रकाश का मनचाहा इस्तेमाल किया जा रहा है।

प्रकाश के रहस्यों पर वैज्ञानिक प्रारंभ से ही मनन करते आ रहे हैं। प्रकाशीय संवृत्तियों को समझाने के लिए एक से एक अनोखे सिद्धांत रचे गए। प्रकाशिकीय उपकरण सिर्फ प्रकाश के बारे में ही सूचनाएं नहीं देते थे, वरन् उनसे

(शेष पृष्ठ 57 पर)

रोगों के उपचार में भारतीय वनस्पति

रत्नेश निगम निदेशक,
इंस्टीट्यूट आफ हरबल प्रोसेसिंग,
डी–297, इंदिरा नगर, लखनऊ-226016

आज के युग में जब कि प्रदूषण, अशुद्ध खाद्य पदार्थ, तथा मानसिक चिंताओं के कारण सम्पूर्ण विश्व रोगों की प्रचुरता से ग्रस्त है, भारतीय वनस्पतियाँ जो आदि काल से ही स्वस्थ जीवन का मूल अंग रही हैं, एक नवीन आशा की किरण हैं। आइये देखें भारतीय मान्यतायें इस विषय में क्या कहती है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में बहुत-सी औषधियां ऐसी हैं जिनके नुकसान पहुँचाने के गुण तुरन्त ही दिखायी देने लगते हैं, जैसे कि भूख न लगना, दाँत टेढ़े-मेढ़े निकलने लगना, आँखों की ज्योति कम हो जाना, रक्त दूषित होकर एनिमिया हो जाना तथा सर चकराने लगना आदि, जबकि बहुत सी आधुनिक औषधियों में उनके विषैले गुण लम्बे समय के बाद ही दिखायी देते हैं, जैसे कि जिगर, गुर्दे तथा हृदय की ताकत धीरे-धीरे कम होना।

विभिन्न भारतीय वनस्पतियां जो आदि काल से ही स्वस्थ जीवन का एक अंग रही हैं तथा आज भी भारत के बहुत से भागों में लोकप्रिय हैं, निम्न हैं।

तुलसी तथा लौंग : भारतीय घरों में तुलसी का पौधा पवित्रता का प्रतीक माना जाता है और लोग इसकी पूजा करते हैं। तुलसी की पत्तियों में रोगों को नष्ट करने के गुण होते हैं। मानसिक तनाव को दूर करने के लिए तुलसी की 2-4 पत्तियाँ खाने से लाभ होता है। बहुत-से लोग चाय में 2-4 तुलसी की पत्तियाँ डालकर चैतन्यता में वृद्धि तथा स्वास्थ्यवर्द्धन हेतु नित्य इसका सेवन करते हैं। तुलसी की पत्ती से चाय का स्वाद तथा सुगंध बहुत बढ़ जाती है। तुलसी के सुगंधित तेल में यूजीनाल नामक एक ऐसा यौगिक होता है जो लौंग के तेल में भी पाया जाता है। लौंग का तेल भारत की आयुर्वेद प्रणाली में, पेट के अनेक विकारों के उपचार तथा दाँत की सुरक्षा में अत्यधिक उपयोगी है। आजकल बहुतसे आधुनिक दन्त चिकित्सक भी लौंग तथा लौंग के तेल का प्रयोग करते हैं।

त्रिफला : आयुर्वेद चिकित्सा में त्रिफला का प्रयोग पेट की सभी बीमारियों से छुटकारा दिलाने, रक्त को शुद्ध करने, स्वास्थवर्धन, तथा बुद्धि के विकास में हमेशा से होता आया है। त्रिफला में हरड़, बहेड़ा और आँवला के सुखाये हुए फलों के चूर्ण का मिश्रण होता है। भारत के सभी भागों में त्रिफला तथा इसके तीनों अंश प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । साधारणतः लोग त्रिफला चूर्ण की एक चम्मच (लगभग 5-10 ग्राम) प्रातः पानी या शहद के साथ लेते हैं। त्रिफला के एक विशेष भाग, आंवला के विटामिन 'सी', लवणों तथा अनेक पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण यह भारत में अत्यधिक प्रिय माना गया है। लोग आँवले का मुरब्बा, चटनी और अचार तो घर-घर बनाते हैं, पर इसका बना हुआ आयुर्वेद रसायन, च्यवनप्राश बहुत ही स्वास्थवर्धक माना जाता है। ऐसा विश्वास है कि प्राचीन काल में च्यवन ऋषि इसके सेवन से वृद्ध अवस्था होते हुए भी यौवन को प्राप्त कर सके। आँवले के चूर्ण को रात में पानी में भिगोकर तथा प्रातः छान कर इससे आँख धोने से आँखों की बहुतसी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं।

नीम तथा बबूल : नीम तथा बबूल के पेड़

सारे भारत के मैदानी क्षेत्रों में अत्याधिक संख्या में पाऐ जाते हैं। बबूल के पेड़ तो ऊसर क्षेत्रों में भी बड़ी सुगमता से लगाऐ जाते हैं। बबूल तथा नीम की पतली पतली टहनियाँ औषधि पदार्थों से युक्त होती हैं, इसी कारणवश इनकी दाँतून करके लोग अपने दाँतों को पुष्ट करते हैं और बहुत से लोग इनका सेवन खाने में तथा औषधियों में करते हैं। नीम की पत्तियाँ और कोपलें बहुत से लोग खाते हैं, ताकि वह चर्म की बीमारियों से मुक्त रहें। प्राकृतिक चिकित्सा में नीम का बहुत महत्त्व है। इसकी पत्तियों के समूह से जुड़ा हुआ वह भाग जो कि टहनी की ओर होता है उसे सींका कहते हैं। नीम के सींके (7-8"), गुर्च की बेल के छोटे से टुकडे (3-4") के साथ रात में भिगोकर तथा सुबह थोड़े-से पानी के साथ पीस कर, मिट्टी या लोहे के बर्तन में गर्म करके प्राकृतिक चिकित्सा में एक औषधि के रूप में उत्तरी भारत के गाँवों में दिये जाते हैं। नीम तथा बबूल के फूल भी सुगंध-युक्त होते हैं और इनकी महक से कीड़े दूर भागते हैं। नीम की पत्तियों को जलाकर लोग मच्छर भगाते हैं तथा रोगी के कमरे को अन्य बीमारी के कीटाणुओं से मुक्त करते हैं।

मेथी : भारत की प्राकृतिक वनस्पतियों में बहुत-सी ऐसी वस्तुएं हैं जो कि हमारी रसोई में प्रति दिन थोड़ी-बहुत मात्रा में मसाले के रूप में प्रयोग में आती हैं। इन मसालों मे मेथी का उपयोग अरबी तथा पीले कद्दू के साथ हमेशा से होता आया है। इससे यह पता चलता है कि मेथी के प्रयोग से अरबी तथा कद्दू के बादीपन को ही दूर किया जाता होगा। मेथी के बीजों का प्रयोग मधुमेह को भी जड़ से मिटाने में भी बहुत उपयोगी है। लगभग 20-25 ग्राम मेथी के बीज रात के समय एक प्याले में लगभग 100 ग्राम पानी में भिगोकर सुबह निहार मुंह, पीसकर पीने से एक मास में मधुमेह ठीक हो जाती है।

कागजी नींबू : कागजी नींबू का प्रयोग भारत में खाने के साथ, अचार के रूप में या पानी में निचोड़ कर होता है। नींबू में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में होने के कारण यह स्वास्थ्यवर्धक तो है ही साथ ही इसके प्रयोग से पेट की किसी भी बीमारी के कीटाणु पनप नहीं सकते। नींबू के नित्य प्रयोग से बदहजमी, पेटदर्द, हैजा, दस्त, उलटी जैसी बीमारियाँ पास नहीं आ सकतीं। कोई भी त्वचा की बीमारी, जैसे कि छाले, मुंहासे, एक्जिमा आदि में नींबू का रस लगाने से काफी लाभ होता है।

कई लोग प्रायः गर्मी के दिनों में नींबू का शर्बत (शिकंजी), नींबू की चाय, मीठा सोडा तथा चीनी डालकर कार्बोनेटेड पेय के रूप में लेते हैं, ताकि गर्मी का प्रभाव शरीर पर कम हो सके। नींबू और शहद पानी में नित्य मिलाकर सेवन करने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। बहुत से लोग अपनी अधिकांश चर्बी को कम करके स्वस्थ शरीर की आकांक्षा से भी नित्य सवेरे नींबू शहद का सेवन करते हैं। नींबू का सुगंधित तेल भी खाने-पीने की वस्तुओं में सुगंध प्रदान करने के काम में आता है।

लहसुन : भारतीय वनस्पतियों में लहसुन का प्रयोग भोजन में एक प्रकार के मसाले के रूप में होता है। परन्तु कुछ लोग इसकी गंध तथा तीखेपन के कारण इसका प्रयोग नहीं करते हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में बहुत सी दवाइयाँ ऐसी हैं जिनसे हृदय कमजोर हो जाता है। जो लोग खानपान में अधिक मांस या चर्बी का प्रयोग करते हैं उन्हें कोलेस्ट्रॉल जैसे हानिकारक यौगिक के प्रभाव से हृदय रोग पकड़ लेता है। ऐसी स्थिति में भारतीय वनस्पतियों में हमेशा से प्रयोग आने वाली लहसुन के एक दो जवे प्रातः कच्चा खाकर पानी पीने से कोलेस्ट्रॉल को कम किया जा सकता है। जो हृदय रोग से छुटकारा दिलाने में सहायक होता है।

लहसुन में तीव्र गंध कुछ ऐसे तेल के कारण होती है, जिनके यौगिकों में गंधक भी एक तत्व होता है, अतः इसका पेट की भी बहुत सी बीमारियों को दूर करने के लिए सब्जी, अचार तथा आयुर्वेदिक दवाइयों में प्रयोग होता है। कुछ कम्पनियाँ लहसुन से निकाले हुए सुगंधित तेल तथा तैलयुक्त रसायनों को कैपसूल के रूप में बनाकर बेचती है, परंतु यदि लहसुन जैसी वस्तु जो सभी घरों में उपलब्ध रहती है, ताजी ही प्रयोग में लायी जाए, तो अधिक लाभकारी सिद्ध होगी।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण भारतीय वनस्पतियाँ लोक चिकित्सा पद्धति में गाँव-गाँव में प्रयोग की जाती हैं तथा आज के युग में प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली में भी अधिक प्रयोग में आती हैं (देखें तालिका)।

(शेष पृष्ठ 19 पर)

तालिका : कुछ महत्वपूर्ण भारतीय वनस्पतियां एवं उनके रोग निवारण में उपयोगिता

नाम (भाग)	वनस्पतिक नाम	रोग जिसके निवारण में लाभदायक है	मात्रा (ग्राम)
कुल्फा (पत्ती)	पोरहुलाका ओलीरेसी	जिगर, गुर्दे के रोग	50-100
मुरकदाना (बीज)	हिबिस्कस अयेलमास्कस	गर्मी नाशक स्वास्थवर्धक	25-50
दूधी (पत्ती)	योफारबिया हर्टा	दमा, पेचिश तथा पेट के रोग	10-20
जर आमला (पत्ती)	फाइलैंथस तिरुरी	पोलिया, जिगर तथा गुर्दे के रोग	10-20
सरपंखा (जड़)	टेफरोसिया परपूरिया	खून की खराबी, मधुमेह, फोडे फुंसी	10-20
सर्पगंधा (जड़)	राऊवुलफीया सर्पेनटाइना	रक्तचाप, पागलपन	10-20
सदाबहार (पत्ती)	विन्कारोजिया	रक्त, कैंसर तथा मधुमेह	10-20
सदाबहार (जड़)	विन्का रोजिया	रक्तचाप	10-20
दोचन्ती (पत्ती)	आर्जरिटम कानजाईडिस	चोट तथा कट जाने पर रक्त प्रवाह रोकने के लिए	10-20
काली तुलसी (पत्ती)	ओसिमम कैनम	पेचिश	10-20
पथरचूर (पत्ती)	कोलियस एरोमेटिकस	मूत्र विकार, दमा तथा खांसी	10-20
जोंकमारी (पत्ती)	अनागोलिस अर्वेसिस	गठियाबाई, दिमागी रोग तथा मिर्गी	10-20
छोटा गोखरु (पत्ती)	जैन्थियम स्ट्रामेरियम	मूत्र विकार, लेकोरिया कैंसर	10-20
हुर हुरिया (पत्ती)	ब्रिओम विस्कोजा	मलेरिया, फोडे-फुंसी पर लेप	10-20
अम्लिका आम बूटी	आक्जेलिस कार्नीकुलेटा	स्कर्वी, जिगर का रोग	10-20
बेल (फल का गूदा)	ईगेल मार्मेलस	पेट की बीमारी, कमजोरी	100-200
लौंग (फूल)	यूजीनिया कैरियोफाइलेटा	दाँत तथा पेट के रोग	2-4 गिन कर
चिरंयता (पत्ती)	स्वेराशिया चिराता	कमजोरी दूर करने में	10-20
नाग फनी (पत्ती)	कैकटस इंडिकस	दमा, कफ, खांसी	10-20
हींग (रेजिन)	फेरुला फोटाइडा	काली खांसी, पेट का रोग	5-10
काली मिर्च (बीज)	पाइपर नाइग्रम	खांसी, कफ, पेट की बीमारी	5-10
अदरक (जड़)	जिंजीवर आफीसिनेलिस	पेट के रोग, खांसी, कफ	10-20
हल्दी (जड़)	कुर्कुमा लांगा	सर्दी, जुकाम	10-20

उपग्रह संचार : एक क्रान्तिकारी खोज

गणेश कुमार पाठक
प्राध्यापक - भूगोल,
महाविद्यालय दूबे छपरा,
बलिया - 277001

एक समय था जब संचार माध्यम कबूतर हुआ करते थे। देरी के साथ साथ संदेश की विश्वसनीयता भी संदेहजनक थी। परन्तु आज हम विश्व के किसी भी कोने का कोई भी समाचार पूर्ण विश्वसनीयता के साथ तुरन्त चाहते है। रेडियो, तार एवं फोन आदि ने इसमें अभूतपूर्व प्रगति की है। परन्तु कृत्रिम उपग्रहों ने तो जैसे क्रान्ति ही ला दी है। पृथ्वी के अन्दर हो अथवा बाहर या आकाश में ही क्यों हो, घटना का सजीव दर्शन क्षणों में किया जाना उपग्रह की ही देन है।

किसी ग्रह की परिक्रमा करने वाले छोटे से पिण्ड को 'उपग्रह' कहा जाता है। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है जो पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इसी तरह वैज्ञानिकों ने भी अपने बुद्धि बल एवं तकनीकी विकास के आधार पर अनेक कृत्रिम उपग्रहों का निर्माण किया है जो ग्रहों, विशेषकर पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। अंतरिक्ष में इन कृत्रिम उपग्रहों को विशाल राकेटों के माध्यम से पहुंचाया जाता है जो अंतरिक्ष में निश्चित कक्षा में स्थापित होने के बाद पृथ्वी की परिक्रमा करने लगते हैं। इनका संचालन वैज्ञानिक पृथ्वी पर से ही करते हैं। इनके संचालन में मशीनों एवं यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। इनको ऊर्जा प्रदान करने हेतु शक्तिशाली सौर बैटरियाँ लगाई जाती हैं जो सौर ऊर्जा संग्रहण करती रहती हैं। ऐसे कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी का तब तक चक्कर लगाते रहते हैं, जब तक कि उनकी गति 28000 किलोमीटर प्रति घण्टा से अधिक रहती है। इससे कम गति होने पर ये कार्य करना बन्द कर देते है अर्थात चक्कर लगाने की क्षमता समाप्त हो जाती है और पृथ्वी पर आ टपकते हैं।

उपग्रह संचार का आविर्भाव : संचार व्यवस्था से जुड़ी विभिन्न प्रणालियाँ चित्र-1 में प्रदर्शित की गयी हैं। उपग्रह संचार प्रणाली माइक्रोवेव संचार प्रणाली एवं ट्रापोस्कैटर संचार प्रणाली से मिलती जुलती है। अन्तर मात्र इतना है कि माइक्रोवेव संचार प्रणाली में अनेक रिपीटर स्टेशनों का उपयोग होता है जो पृथ्वी की सतह पर स्थित होते हैं। इसके विपरीत उपग्रह संचार प्रणाली में रिपीटर स्टेशन अंतरिक्ष में स्थित होता है। यह उपग्रह के नाम से जाना जाता है। इन्हें राकेटों की सहायता से अंतरिक्ष में स्थापित किया जाता है।

उपग्रह संचार प्रणाली की सर्व प्रथम परिकल्पना आर्थर क्लार्क ने 25 मई, 1945 में की थी। उन्होंने समकालिक कक्षा में स्थित उपग्रहों के माध्यम से विश्व संचार के लिए एक प्रणाली का प्रस्ताव रखा था। इसके बाद 1954 में अमरीकी वैल टेलीफोन प्रयोगशाला के जे.आर.पियर्स ने उपग्रहों के द्वारा रेडियों संकेत भेजने की परिकल्पना का अध्ययन किया। प्रथम कृत्रिम उपग्रह स्टुपनिक के छूटने से दो वर्ष पूर्व पियर्स ने संचार उपग्रहों पर एक ठोस रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। उसके बाद उपग्रह संचार प्रणाली में अभूतपूर्व विकास किया गया।

संचार के लिए चन्द्रमा का उपयोग : कृत्रिम उपग्रह संचार प्रणाली के पूर्ण विकास से पूर्व चन्द्रमा का उपयोग संचार प्रणाली के रूप में किया गया था। जुलाई 1954 में अमरीकी नौसेना ने चंद्रमा के द्वारा प्रथम संदेश पृथ्वी

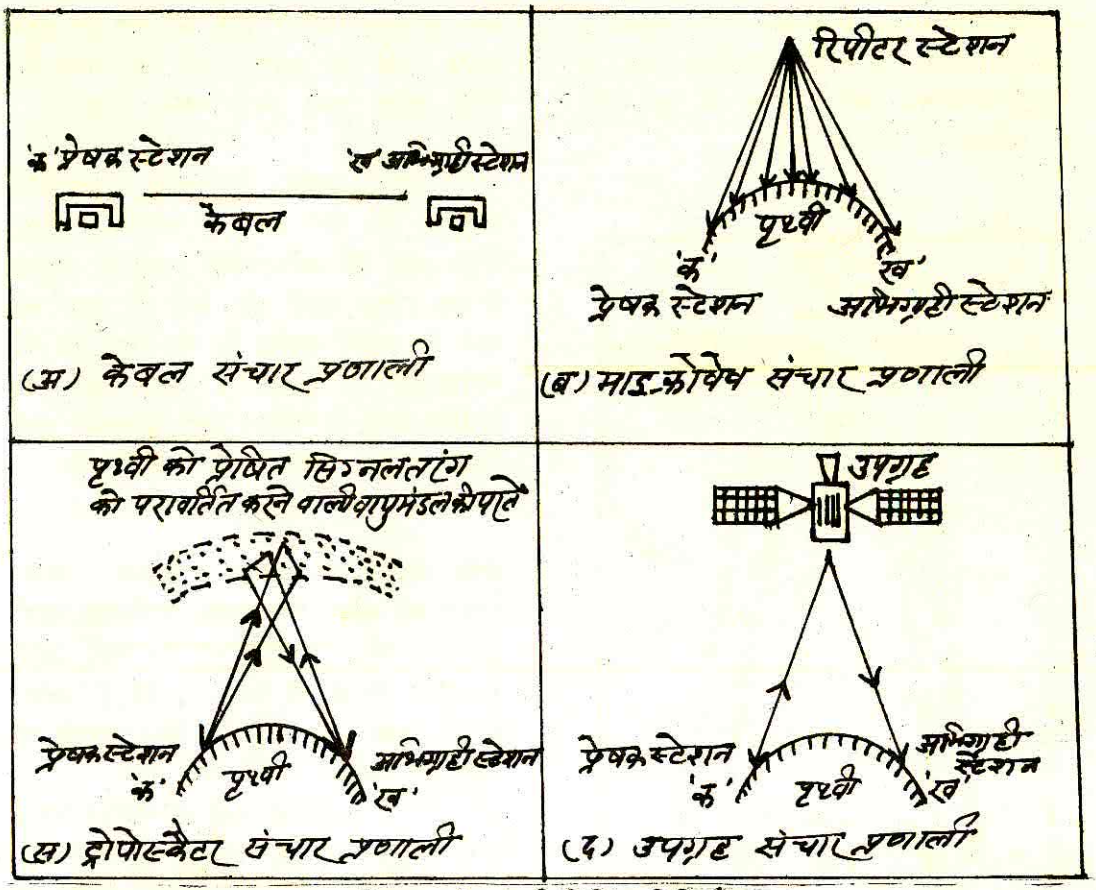

चित्र-1: संचार की विभिन्न विधियाँ

से भेजकर परावर्तित कराया एवं पृथ्वी पर अभिगृहीत किया। इसमें संदेश आवृत्तियों के लिए चन्द्रमा एक परावर्तक का कार्य करता था। सन 1956 में वाशिंगटन (डी.सी.) एवं हवाई के बीच चन्द्रमा का उपयोग करके एक सम्पर्क स्थापित किया गया। इस संचार सम्पर्क ने सन 1962 तक संचार सेवा प्रदान की। किन्तु इस प्रणाली की खास बात यह थी कि यह सम्पर्क कार्य तभी करता था जब चन्द्रमा दिखाई देता था। इस संचार प्रणाली में भू-केन्दों पर 26 मीटर व्यास के एंटेना का उपयोग हुआ था एवं 430 मेगाहर्टस पर 100 कि.वाट शक्ति प्रेषित की गई थी।

उपग्रह संचार प्रणाली की मुख्य बातें : उपग्रह संचार प्रणाली के तीन मूल अंग होते है जिसमें एक भू-केन्द्र एवं एक अभिग्राही केन्द्र होता है, दूसरा संचार माध्यम जो वायुमण्डल होता है एवं तीसरा उपग्रह। उपग्रह संचार तकनीकी तंत्र में विभिन्न प्रकार के टेलीफोन, टेलेक्स, ध्वनि संकेत भू-केन्द्रों के उपकरणों की सहायता से उच्च आवृत्ति में बदलकर उपग्रह की तरफ भेजे जाते हैं। उपग्रह उच्च आवृत्ति संकेत अभिगृहीत करता है एवं उसके बाद उसे दूसरी आवृत्ति में बदल कर पुनः पृथ्वी की तरफ प्रेषित कर देता है जिसका अभिग्रहण निर्दिष्ट भू-केन्द्र करते हैं।

उपग्रह संचार प्रणाली इतनी सक्षम है कि एक उपग्रह पृथ्वी के एक तिहाई भाग में एवं तीन उपग्रह सम्पूर्ण पृथ्वी पर संचार व्यवस्था

स्थापित कर सकते है। उपग्रह संचार प्रणाली में रख-रखाव की भी जटिल समस्या नहीं है। चित्र-2 से उपग्रह संचार प्रणाली के मूल अंगों को समझा जा .सकता हैं।

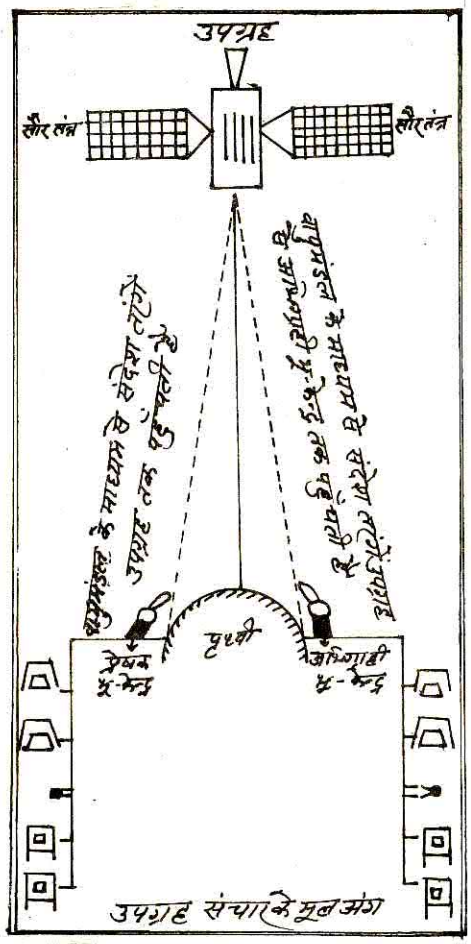

चित्र-2 उपग्रह संचार प्रणाली के मूल अंग

संचार उपग्रह के प्रकार : संचार उपग्रह दो प्रकार के होते हैं; पहला निष्क्रिय एवं दूसरा सक्रिय। निष्क्रिय संचार उपग्रह में किसी प्रकार के उपकरण का प्रयोग नहीं होता है। ये मात्र पृथ्वी से प्रेषित संकेतों का परावर्तन करते हैं जिसे अभिग्राही स्टेशन प्राप्त कर लेते हैं। इनमें विद्युत ऊर्जा का उपयोग भी नहीं होता है। इनका जीवन काल काफी लम्बा होता है।

सक्रिय उपग्रह में अनेक इलेक्ट्रानिक उपकरण लगे होते हैं जिन्हें चलाने के लिए विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। उपग्रहों में यह विद्युत ऊर्जा सौर सेलों से प्राप्त की जाती है। सक्रिय उपग्रहों के सौर उर्जा तंत्र की कार्यशीलता इन उपग्रहों के जीवन काल का निर्धारण करती है। वर्तमान समय में प्रयुक्त सभी संचार उपग्रह सक्रिय संचार उपग्रह हैं।

संचार उपग्रहों की अंतरिक्ष में कक्षाएं : संचार उपग्रहों की कीमत एवं उनकी उपयोगिता काफी हद तक उनकी कक्षाओं पर ही निर्भर करती है। संचार उपग्रहों की कक्षाएं ऊंचाई के आधार पर दो प्रकार की होती हैं। निम्न ऊँचाई की कक्षा एवं अधिक ऊंचाई की कक्षा।

निम्न ऊंचाई की कक्षा में स्थापित उपग्रह पृथ्वी के थोड़े से क्षेत्र में ही संचार व्यवस्था स्थापित कर पाते हैं। जबकि अधिक ऊंचाई की कक्षा में स्थापित संचार उपग्रह पृथ्वी के विशाल क्षेत्र में संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं। पृथ्वी से उपग्रहों की दूरी को स्पष्टतया समझा जा सकता है।

अधिकांश उपग्रह अंतरिक्ष में समकालिक कक्षा में स्थापित किए जाते हैं। उपग्रहों की कक्षीय गति एवं काल दूरी के अनुसार परिवर्तित होता रहता (चित्र–3) है। समकालिक कथा के तीन उपग्रह (चित्र-4) सम्पूर्ण पृथ्वी में संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं।

उपग्रह संचार प्रणाली के प्रशासनिक तंत्र को कार्यशील करने हेतु तीन प्रशासनिक तंत्रों में विभक्त किया गया है एवं तदनुसार ही उपग्रह संचार प्रणाली का विकास किया गया है।

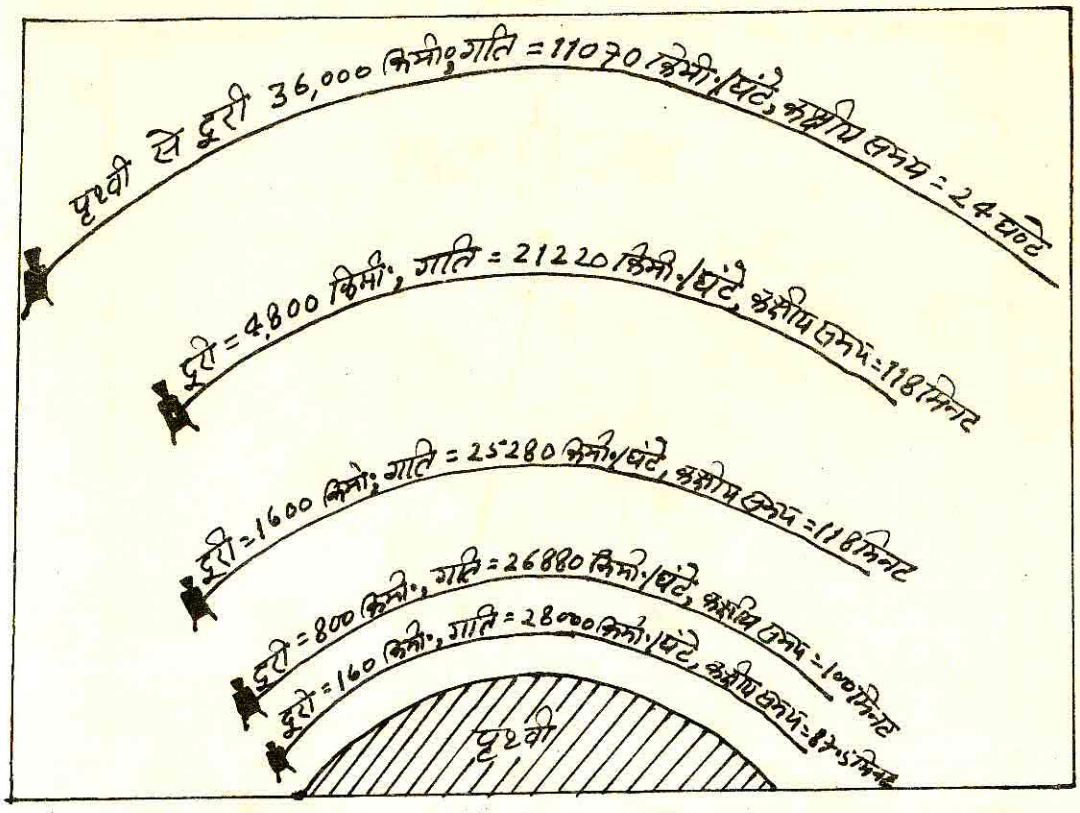

चित्र-3 पृथ्वी से उपग्रहों की दूरी, गति एवं कक्षीय काल

उपग्रह संचार प्रणाली का प्रथम प्रशासनिक गठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया गया है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय उपग्रह संचार प्रणाली कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दो उपग्रह संचार संस्थायें कार्य कर रही हैं। पहला संगठन है इन्टैलसेट। इसका गठन 1962 में किया गया था। इस संस्था के सदस्य देशों की संख्या 108 है। यह संस्था सदस्य देशों को अपने उपग्रहों से संचार सेवायें प्रदान करती हैं तथा सदस्य देशों के उपग्रहों के रखरखाव एवं प्रमोचन की जिम्मेदारी इस संस्था की ही होती है।

उपग्रह संचार संबंधी दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ''इनमैरसैट'' है। इसक सदस्य देशों की संख्या 50 है। यह संस्था भी सदस्य दोशों को अपने उपग्रहों की सहायता से उनके व्यावसायिक पोत परिवहन अवं वायुयानों की उडानों के लिए संचार सेवा प्रदान करती है तथा आपात कालीन सेवा भी प्रदान करती है। उपग्रह संचार प्रणाली का यह गठन क्षेत्रीय आधार पर हुआ है। इसके तहत सहकारिता के आधार पर बहुत से देश परस्पर मिलकर संचार उपग्रहों का निर्माण कर अंतरिक्ष में भेजते है। 'अरब सैट' इसी तरह के एक सहकारी समझोते के तहत छोड़ा गया संचार उपग्रह है। 'नार्डसैट' एवं यूरोपीय अंतरिक्ष संस्था भी सहकारी समझौते हैं जिनके अंतर्गत सहकारिता के आधार पर उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़े गए है। गए हैं। इसी तरह जर्मनी एवं फ्रांस के पारस्परिक सहयोग से सिम्फोनी -1 एवं सिम्फोनी-2 उपग्रहों का निर्माण किया गया है। इनको क्रमशः 1974 एवं 1975 में अंतरिक्ष में छोड़ा गया था।

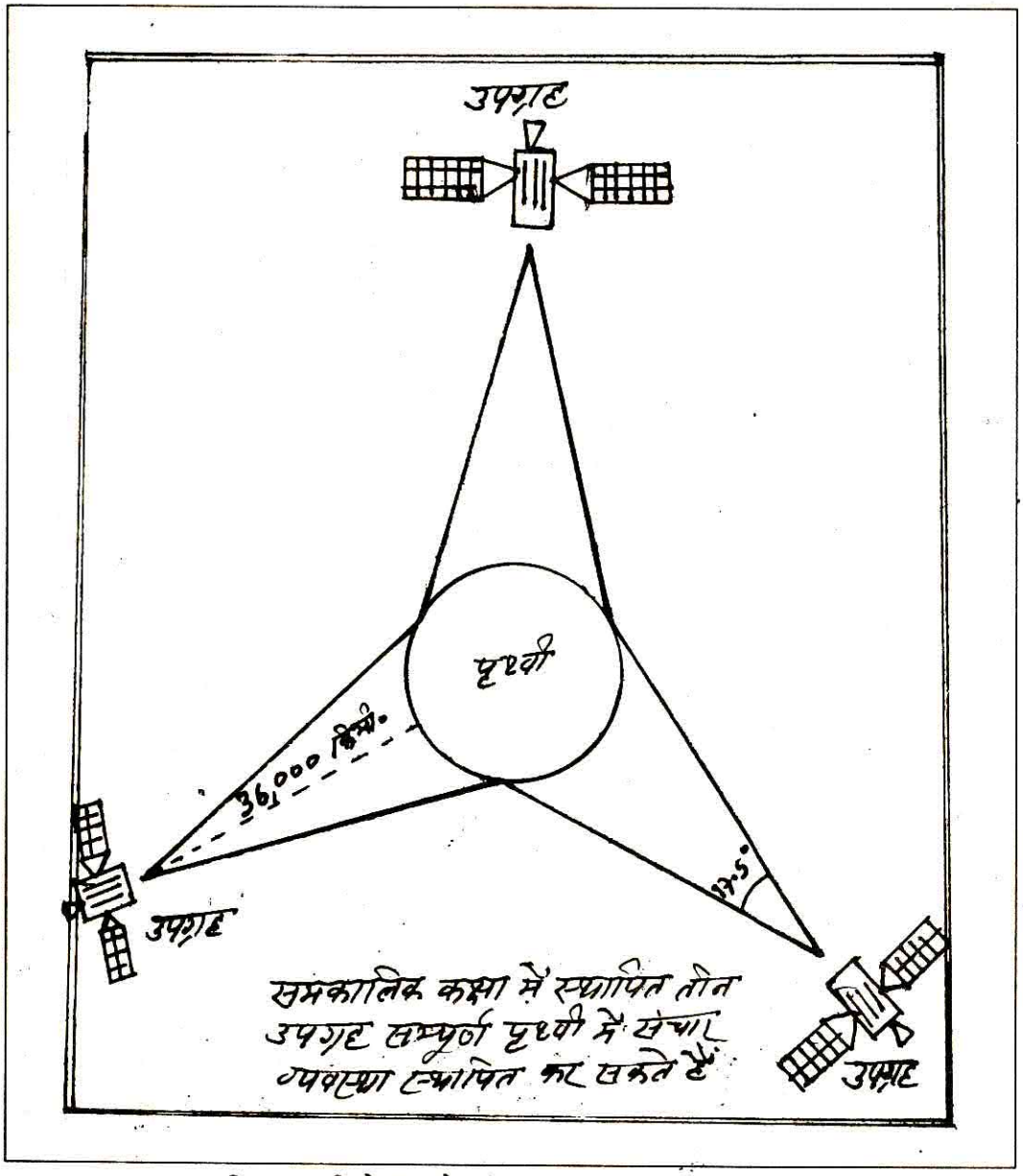

चित्र-4 पृथ्वी से उपग्रहों की दूरी, गति एवं कक्षीय काल

तीसरी व्यवस्था के अन्तर्गत घरेलू उपग्रह संचार व्यवस्था आती है। संचार उपग्रहों की उपयोगिता को देखते हुए अनेक देशोंने अपने निजी उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित किए हैं। इनमें कनाड़ा का ''अनिक'' स.रा.अमरीका का 'वेस्टार', रूस का 'मौलिया', इण्डोनेशिया का ''पलाया'' एवं भारत का 'इन्सैट' उपग्रह संचार मुख्य है।

उपग्रह संचार की उपयोगिता : उपग्रहों पर आधारित संचार प्रणाली वर्तमान समय में हमारे जीवन का अंग बन गई है। इसके उपयोग की

सम्भावनाएं दिन प्रतिदिन और बढ़ती जा रही हैं। मानव जीवन को सुव्यवस्थित करने में उपग्रह संचार प्रणाली महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

अब वैज्ञानिकों को भूगोल, भूगर्भ, कृषि, वन, नदियों, खनिजों, समुद्रों, भू-संरक्षण आदि अनेक विषयों के बारे में तथ्यपरक बहुमूल्य जानकारी उपग्रह संचार प्रणाली से मिल जाती जो वैज्ञानिकों की पूरी सेना लगा देने पर भी सम्भव नहीं होता।

उपग्रह संचार प्रणाली से इस बात की भी जानकारी की जा सकती है कि किस क्षेत्र में बीज बोने से अच्छी फसल उत्पन्न होगी एवं अधिक उत्पादन होगा। किस क्षेत्र में जमीन के नीचे कितना जल है, पर्वतों पर बर्फ का जमाव कितना है, नगरों के किस क्षेत्र में आबादी घनी है एवं गंदगी व्याप्त है तथा ऐसे लोगों को कहाँ बसाया जाय।

उपग्रह संचार प्रणाली से इस बात का भी पता लगाया जा रहा है कि विभिन्न क्षेत्रों पर पहुंचने वाली सूर्य की किरणों एवं सौर ऊर्जा का सबसे अच्छा उपयोग कैसे एवं किन क्षेत्रों में किया जा सकता है।

उपग्रह संचार प्रणाली से यह भी ज्ञात किया जा रहा है कि भूमि के नीचे जल धारा कहाँ प्रवाहित हो रही है एवं कहाँ कितने खनिज पाये जाते हैं। यही नही भू एवं रेत के नीचे दबी पड़ी सभ्यताओं की जानकारी भी उपग्रह संचार प्रणाली से की जा सकती है।

बाढ़, सूखे एवं फसलों के बारे में भी उपग्रह संचार प्रणाली प्राणरक्षक ज्ञान उपलब्ध कराती है। फसलों में रोग फैलने को इससे प्राप्त जानकारी से रोका जा सकता है।

भूगर्भीय सूचनायें भी इस प्रणाली से प्राप्त होती रहती है। इस तरह की प्राप्त सूचनाएं कृषि, मत्स्य पालन, वन विज्ञान, जलविज्ञान, आदि अनेक क्षेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

उपग्रह संचार प्रणाली से मौसम संबंधी सूचनाए भी प्राप्त होती हैं, जिनका एकत्रण एवं विश्लेषण करके मौसम पूर्वानुमान करना सरल होता है।

सैनिक एवं सुरक्षा कार्यो में भी उपग्रह संचार प्रणाली विशेष भूमिका निभा रही है। इससे समुद्री तूफानों की भी सूचना मिलती है।

अंतर्राष्ट्रीय संचार व्यवस्था के तहत उपग्रह संचार प्रणाली से दूर दूर तक रेडियो एवं दूरदर्शन के कार्यक्रम भी प्रसारित किए जा रहे हैं तथा टेलीफोन रिमोट कण्ट्रोल द्वारा सम्भव हो गया है। इस तरह उपग्रह संचार प्रणाली के माध्यम से विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। इसकी उपयोगिता को देखते हुए अब तक लगभग 5000 उपग्रह विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंतरिक्ष में स्थापित किए जा चुके हैं एवं मानव को एक दूसरे के निकट पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। □

(पृष्ठ 13 का शेष)

भारत ऐसी प्राकृतिक वनस्पतियों का भंडार है जो कि रोग के उपचार में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

अधिक जानकारी के लिए पाठकों को कर्नल सर रामनाथ चोपड़ा की ग्लासरी आफ इण्डियन मेडिसिनल प्लांट, नंदकरनी द्वारा लिखित इण्डियन मैटीरिया मेडिका तथा डब्लू.एच.ओ.द्वारा प्रकाशित पुस्तक ट्रेडिशनल मेडिसिन एण्ड हेल्थ केयर कवरेज (1983) पढ़ना चाहिए।

भारतीय वनस्पतियों से निकाले अनेक शुद्ध यौगिकों (दवाइयाँ) में से कुछ हैं, एम्ब्रेटोलाइड (मुश्कदाना से), पाइपरीन (काली मिर्च से) यूनीनाल (लौंग से), शोगेआल (अदरक से), अल्फा कुर्कुमिन एवं टरमिरोन (हल्दी से) आदि। □

विद्युतीय अवरोध आयतन लेखिका: रक्त प्रवाह मापन

घनश्याम दास जिन्दल
इलेक्ट्रॉनिकी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र
बम्बई-400 085

रक्त प्रवाह सम्बन्धी व्याधियों के निदान में रक्त प्रवाह मापन का एक विशेष योगदान है। प्रचलित विधियाँ या हो बहुत कीमती है अथवा हानिकारक। प्रस्तुत लेख में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में विकसित एवं प्रयुक्त सरल किन्तु हानिरहित विधि का विवरण दिया गया है।

रक्त एवं रक्त प्रवाह जीवन का मूलस्रोत है। रक्त प्रवाह के द्वारा ही शरीर के विभिन्न अवयवों को वांछित ऊर्जा पहुँचती है। इसके रुकने पर शरीर के अंग समुचित कार्य नही कर पाते हैं जिससे हृदय घात, लकवा या अंग सड़ने जैसी घातक बीमारियाँ जन्म लेती हैं।

जीव धारियों मे रक्त प्रवाह दो विभिन्न प्रकार की नलिकाओं द्वारा होता है। धमनियों द्वारा आक्सीजन युक्त रक्त हृदय से शरीर के सूक्ष्मतम हिस्सों/अवयवों मे जाता है जहाँ से दूषित कारबनडाइ आक्साइड युक्त रक्त शिराओं द्वारा पुनः हृदय के दांए भाग में आ जाता है। हृदय के दांए भाग से यह रक्त फेफड़ों में आक्सीकरण के लिए जाता है जहाँ श्वास प्रक्रिया द्वारा रक्त में आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है तथा कार्बनडाइ आक्साइड शरीर से बाहर निकल जाती है। फैफड़ों से आक्सीकृत रक्त हृदय के बांए भाग में पहुँचता है जहाँ से यह पुनः प्रवाह के लिए जाता है।

किसी कारणवश धमनियों में बाधा पडने पर वहाँ दर्द तथा धीरे-धीरे कालापन, ठंडापन तथा जख्म न भरने के लक्षण पैदा होने लगते हैं और अन्त मे वह अंग सड़ने लगता है जिसे काटने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। शिराओं में रुकावट आने पर अंग में सूजन आती है जहाँ नसें धीरे-धीरे बड़ी और सर्पाकार होने लगती हैं, त्वचा मे संक्रमण एवं जख्म होने लगते हैं। किसी कारणवश यदि यह शिराओं की रुकावट (Thrombosis) फेफड़ों में पहँच जाए तो पलमोनरी एम्बोलिज्म जैसी घातक बीमारी से तो रोगी की मृत्यु निश्चित ही है।

धमनियों मे यह रुकावट मुख्यतः निम्न कारणों से हो सकती है।

(1) चोट लगने से धमनी कटने एवं जुडने से होने वाली रुकावट के कारण,
(2) आयु, उच्च रक्तचाप, मधुमेह अथवा धूम्रपान के कारण धमनियों के संकरे होने (Atherosclerotic narrowing) से,
(3) धमनियों में विशेष प्रकार का संक्रमण (Aortoarteritis) होने से,
(4) हृदय वाल्व की बीमरियों के कारण हृदय में उपस्थित खून के कतरों के धमनियों मे पहुँचने से।

शिराओं में रुकावट मूलतः निम्न कारणों से हो सकती है।

(1) नसों में तनिक सी भी चोट लगने से (यह ग्लूकोज चढ़ाने पर भी सम्भव है),
(2) शल्य क्रिया आदि के बाद अथवा अन्य कारण वश रोगी के लम्बे समय तक लेटे अथवा बैठे रहने के कारण,
(३) स्त्रियों के गर्भवती होने अथवा गर्भ निरोधक गोलियां खाने से।

रक्त प्रवाह को मापने के लिए एन्जियोग्राफी नामक अतिक्रमिक (Invasive) तकनीक से सर्वाधिक सही जानकारी प्राप्त होती है परन्तु कभी कभी इससे रोगी को खतरा भी हो जाता है। इसलिए इस विधि

का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होने पर ही किया जाता है। अल्ट्रासाण्ड तकनीक से शरीर में कोई हानि तो नहीं होती परन्तु उपकरण अत्यंत कीमती होने के कारण इसका उपयोग विकासशील देशों में सीमित है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के इलैक्ट्रोनिकी प्रभाग ने एक अत्यंत सरल विधि का विकास किया है जिससे रक्त प्रवाह शरीर को किसी भी तरह की हानि पहुँचाए बिना ज्ञात किया जा सकता है।

विद्युत अवरोध आयतन लेखिका (Electrical Impedance plethysmography) नामक इस विधि का सर्व प्रथम विकास 1940 में जर्मनी वैज्ञानिक जेन नाइबोर ने किया था। पिछले 50 वर्षों में इस तकनीक का इतना विकास हुआ है कि आजकल इसका उपयोग शरीर के अंगों का टोमोग्राफिक चित्रण के लिए भी किया जाता है।

इस विधि में मानव शरीर के विभिन्न हिस्सों का विद्युतीय अवरोध नापा जाता है जो अवयवों के अवरोध गुणांक (तालिका - 1), रक्त प्रवाह की गति तथा हृदय स्पन्दन से आए रक्त की मात्रा पर निर्भर करता है। हृदय स्पन्दन के दौरान जब रक्त शरीर के किसी हिस्से मे पहुँचता है तो इस हिस्से का विद्युतीय अवरोध थोड़ा कम हो जाता है क्योंकि रक्त का अवरोध गुणांक अन्य अवयवों (हड्डी, मांस पेशी, चर्बी इत्यादि) की अपेक्षा काफी कम होता है। इसलिए अवरोध में आई इस कमी से उस हिस्से में आए रक्त का मान ज्ञात हो जाता है।

तालिका-1 शारीरिक अवयवों के अवरोध गुणांक

अवयव	अवरोध गुणांक (ओम-मी.)
हड्डी	166.0
चर्बी	25.0
फेफड़े	15.0
मांसपेशी	8.0
रक्त	1.5
मूत्र	0.6

विद्युत अवरोध आयतन लेखिका में इलेक्ट्रोडों की सहायता से शरीर के किसी भी अंग में विद्युत प्रवाह किया जाता है। सुरक्षा की दृष्टि से डी.सी. के स्थान पर 50,000 आवृति की साइन्यूसाइडल धारा का प्रयोग किया जाता है। इसका आयाम 10 मिली एम्पीयर से अधिक नहीं होना चाहिए।

उदाहरण के लिये पैर के रोगों में इलेक्ट्रोडों (1) तथा (2) की सहायता से मानव शरीर में विद्युत प्रवाहित की जाती है। इससे उत्पन्न विभव को दो अन्य इलेक्ट्रोडों (3) तथा (4) की सहायता से नापा जाता है (चित्र 1-क)। ये मापन इलेक्ट्रोड उसी

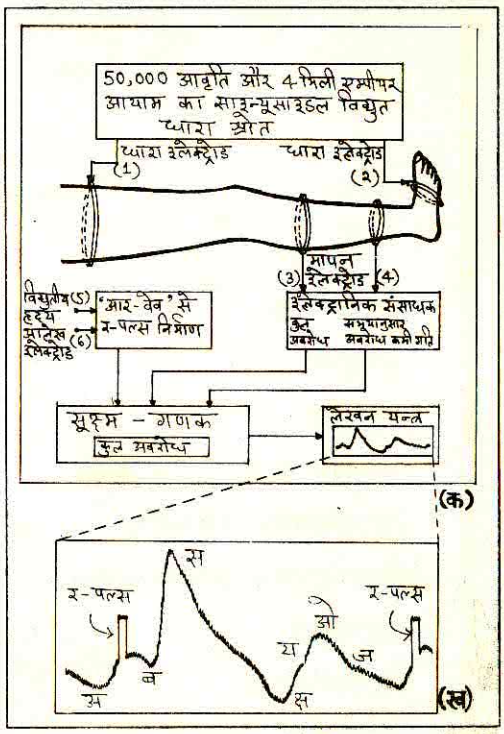

चित्र-1- पैरों में रक्तप्रवाह मापन (क) प्रयुक्त इलेक्ट्रोडों की स्थिति एवं तकनीकी विवरण (ख) प्राप्त आयतन लेख

स्थान पर लगाये जाते है जहाँ जांच करनी है। इससे कुल अवरोध, समयानुसार अवरोध में कमी तथा उसका गतिमान मापा जाता है। दो अन्य इलेक्ट्रोडों (5) एवं (6) से प्राप्त हृदय के विद्युतीय संकेतों से र-

(शेष पृष्ठ 57 पर)

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छटी मंजिल, 111, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई - 400 020 (भारत)

फोन : 290 914 -15 टेलेक्स : 011 - 83122

तार : रेअर अर्थ बंबई

: हमारे उत्पादन :

इलमेनाइट
रुटाइल
जरकान
जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)
जिरकोनियम ऑक्साइड
जिरकोनियम आक्सीक्लोराइड
गारनेट
सिलिमेनाइट
मोनाजाइट

रेअर अर्थ्स क्लोराइड
रेअर अर्थ्स फ्लोराइड
रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस
सीरियम ऑक्साइड
सीरियम हाइड्रेट
सीरियम कार्बोनेट
ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइट्रेड)
समेरियम/इट्रियम/गैडोलिनियम सांद्र

थोरियम/सीरियम नाइट्रेट - थोरियम ऑक्साइड
एवं
कृत्रिम रुटाइल

CHOUDHARY BROS.

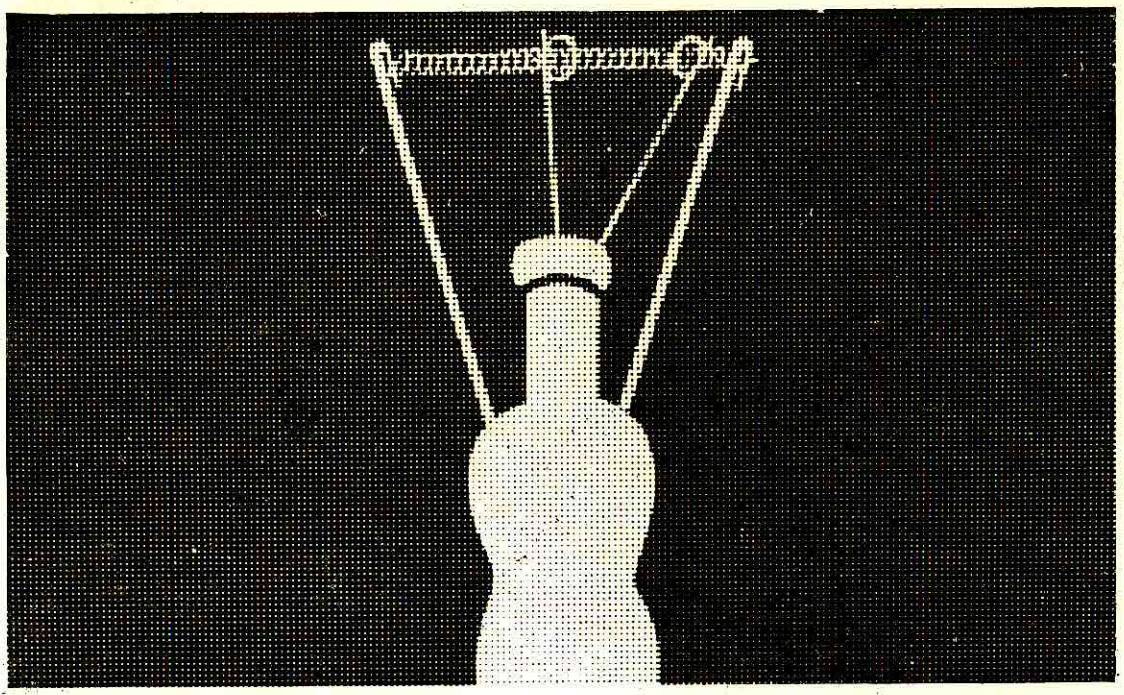

Midhani. Lighting the path to self-reliance in special metals and alloys.

Midhani is India's first and only special alloys plant manufacturing the entire range of special metals and alloys needed by various industries.

For instance, molybdenum, tungsten and high purity nickel for the lamp industry.

The basic production technology has been acquired from reputed foreign organisations like Creusot-Loire and Pechiney-Ugine-Kuhlmann of France and Krupp Kloeckner A of West Germany. Midhani also has the latest equipment and quality control facilities to ensure that all Midhani alloys meet international standards in quality and performance.

Some of the unique production facilities are the powder metallurgy shop for compacting, sintering, swaging and wire drawing of molybdenum and tungsten products, sophisticated melting and refining furnaces, precision forging, rolling and wire drawing equipment and a central quality control laboratory.

Midhani's product range includes iron, nickel and cobalt based superalloys, special purpose steels, titanium and titanum alloys, electrical and electronic alloys including electrical resistance alloys and powder metallurgy products.

MIDHANI

Mishra Dhatu Nigam Limited

(A Government of India Enterprise)

Kanchanbagh Hyderabad 500 258

Sista's/Midhani/153-84

चिर यौवन का रहस्य : रक्त का नियंत्रित नाड़ी-दाब

डा. केशव कुमार
सहायक प्रोफेसर, एनाटामी विभाग
मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज.
इलाहाबाद

यदि धमनियों की मध्यपर्त्त (ट्यूनिका मीडिया) में स्थित प्रत्यास्थ तन्तुओं (एलास्टिक फाइबर) में होने वाले आयु वृद्धि के परिवर्त्तनों (विखण्डन तथा विनष्टीकरण) को नियंत्रित कर दिया जाय तो युवावस्था से वृद्धावस्था की ओर आयु वृद्धि की प्रक्रिया को भी नियंत्रित किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति उतना ही वृद्ध होता है जितनी वृद्ध उसकी धमनियाँ होती है।

धमनियों की मध्य पर्त्त में स्थित प्रत्यास्थ तन्तुओं में आयु वृद्धि के परिवर्तन तथा आन्तरिक पर्त में एथरोस्क्लीरोसिस के परिवर्तन दोनों साथ ही साथ होते हैं। इसका कारण है रक्त का बढ़ता हुआ नाड़ी दाब। प्रत्यास्थ तन्तुओं के विखण्डन के बिना एथरोमा बनने की प्रक्रिया तथा एथरोमा बनने की प्रक्रिया के बिना प्रत्यास्थ तन्तुओं के विखण्डन की प्रक्रिया को एथरोस्क्लीरोसिस से तथा एथरोस्क्लीरोसिस को आयु वृद्धि की प्रक्रिया से पृथक करके धमनियों में नहीं देखा जा सकता है।

किसी भी व्यक्ति का युवा अथवा वृद्ध होना उसकी आयु पर नहीं बल्कि उसकी धमनियों में बहने वाले रक्त के नाड़ी-दाब पर निर्भर करता है धमनियों में बहने वाले रक्त के नाडी-दाब पर ही धमनियों में आयु वृद्धि तथा एथरोस्क्लीरोसिस के परिवर्तन निर्भर करते हैं। अत: नाड़ी-दाब से यह निश्चित किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति युवा है अथवा वृद्ध। धमनियों की मध्यपर्त प्रत्यास्थ तन्तुओं के विनष्ट हो जाने के उपरान्त उनका स्थान कोलैजेन तन्तु ले लेते हैं। जिनका स्थान पुन: प्रत्यास्थ तन्तु नही ले सकते है। इसी प्रकार एथरोस्क्लीरोसिस प्रतिस्थापित धमनी को न तो एथरोस्क्लीरोसिस से मुक्त किया जा सकता है और न ही रक्त के नाड़ी दाब को कम किया जा सकता है अत: आयु वृद्धि की प्रक्रिया को नियंत्रित तो किया जा सकता है परन्तु वृद्ध अवस्था के बाद पुन: युवावस्था प्राप्त नही की जा सकती है।

मानसिक सक्रियता के कारण रक्त का सिस्टोलिक दाब तथा हृदय की गति बढ जाती है। जिससे रक्त के नाड़ी दाब में वृद्धि हो जाती है। परन्तु शारीरिक सक्रियता से सिस्टोलिक दाब तथा हृदय गति में वृद्धि क्षणिक होने के कारण नाडी दाब में कोई वृद्धि नही होती है। विश्राम की अवस्था आते ही रक्त दाब तथा हृदय गति पुन: सामान्य से भी कम हो जाते हैं। इसी कारण खिलाड़ियों तथा श्रमजीवियों में रक्त का नाड़ी दाब नियंत्रित रहता है। परन्तु बुद्धिजीवियों में, जिनमें मानसिक सक्रियता हमेशा अधिक रहती है यदि शारीरिक सक्रियता बढ़ाई नही गई तो रक्त का नाड़ी दाब बढ़ता जाता है। अत: रक्त के नाड़ी दाब को नियंत्रित करने के लिये मानसिक रूप से अधिक सक्रिय व्यक्तियों को अपनी शारीरिक सक्रियता भी बढ़ा देनी चाहिए।

बहुधा श्रमजीवी एवं ग्रामीण लोग जीवन यापन करने के लिये शारीरिक श्रम ज्यादा करते हैं। इन्हें बौद्धिक अथवा मानसिक कार्य नही करने पड़ते जिससे इन लोगों में रक्त का नाड़ी दाब नियंत्रित रहता है। उसमें अपेक्षाकृत बहुत कम

वृद्धि होती है। अतः इन व्यक्तियों का धमनियों में आयु वृद्धि की प्रक्रिया के परिवर्तन भी नियंत्रित रहते है। इन व्यक्तियों की धमनियों में न तो एथरोस्क्लीरोसिस होती है और न आयु वृद्धि प्रक्रिया परिवर्तन। लोग 80 वर्ष की आयु तक युवा रहते हैं। 80 वर्ष की आयु के बाद ही इनकी धमनियों में आयु वृद्धि की प्रक्रिया तथा एथरोस्क्लीरोसिस आरम्भ होती है जो वृद्धावस्था के आगमन की सूचक है।

तालिका - १ : विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों में रक्त का नाडी दाब (मि.मी. मर्करी)

आयु वर्ग (वर्ष)	शहरी क्षेत्र के व्यक्ति जिनमें मानसिक सक्रियता अधिक तथा शारीरिक सक्रियता कम है		ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्ति जिनमें मानसिक सक्रियता कम तथा शारीरिक सक्रियता अधिक है	
	पुरुष	महिलायें	पुरुष	महिलायें
50-54	50	51	42	43
55-59	54	60	46	46
60-64	58	63	49	50
65-69	63	72	52	51
70-74	68	76	54	55
75-79	73	80	56	57

इसके विपरीत शहरी लोग अथवा बुद्धि-जीवी शारीरिक श्रम बिकुल न के बराबर करते हैं। इन्हें मानसिक कार्य अधिक करने पड़ते हैं। इनके रक्त का नाड़ी दाब 50 वर्ष की आयु में ही 50 मि.मी. तथा 79 वर्ष की आयु में 80 मि.मी. मर्करी तक पहुँच जाता है। अतः ये लोग केवल 50 वर्ष की आयु तक ही युवा रहते है। 79 वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते पूर्णतया वृद्ध हो चुके होते है। 80 वर्ष की आयु तक इनकी धमनियों में आयु वृद्धि तथा एथरोस्क्लीरोसिस की क्रिया पूर्ण हो चुकी होती है। इस से यह स्पष्ट है कि श्रम जीवियों में वृद्धावस्था बुद्धिजीवियों की तुलना में 30 वर्ष के बाद आती है। 50 वर्ष के बुद्धिजीवी का नाड़ी-दाब 79 वर्ष के श्रम जीवी के रक्त के नाड़ी दाब के बराबर होता है।

वास्तव में धमनियों में रक्त के बढ़ते हुए नाड़ी-दाब के परिवर्तनों को ही आयु वृद्धि के परिवर्तनों की संज्ञा दी गई है। अतः रक्त के नाड़ी-दाब को नियंत्रित करके ही चिर यौवन प्राप्त किया जा सकता है। जब किसी धमनी की दीवाल अपनी गुहा में बहने वाले रक्त के बढ़ते हुए नाड़ी दाब के अनुरूप अपने आप को ढालने का प्रयास करती है तभी स्क्लीरोसिस तथा एथरोजेनेसिस होती है। रक्त के बढ़ते हुए नाड़ी दाब को सम्हालने के लिये धमनी की दीवाल में प्रत्यास्थ तन्तुओं का स्थान कोलैजेन तन्तु लेते हैं। ताकि धमनी रक्त के बढ़ते हुए नाड़ी-दाब को सहन कर सके। अतः यदि रक्त का नाड़ी-दाब नियंत्रित रहे तो प्रत्यास्थ तन्तुओं का स्थान कोलैजेन तन्तु कभी न लेंगे और एथरोमा भी नहीं बनेगा। अतः कहा जा सकता है कि एथरीस्क्लोसिस ही आयु वृद्धि की प्रक्रिया है।

तालिका - 2 : रक्त के नाडी दाब का वाहि प्रकोष्ठ धमनी तथा ऊर्ध्व महाधमनी पर प्रभाव

रक्त का नाडी दाब (मि.मी. मर्करी)	वाहि : प्रकोष्ठि का धमनी की दीवाल की दशा	उर्ध्व महाधमनी की मध्यपर्त में स्थित प्रत्यास्थ तन्तुओं में आयु वृद्धि परिवर्तन
50-60	मुलायम अथवा नर्म	अनुपस्थित
60-70	कठोर	प्रगति की ओर
70-80	अधिक कठोर	स्थापित

रक्त के सिस्टोलिक तथा डायास्टोलिक दाब के अन्तर को रक्त का नाड़ी दाब कहते हैं। सामान्य दशा में रक्त का नाड़ी-दाब 30 मि.मी. मर्करी से लेकर 50 मि.मी. मर्करी तक होता है। 60 मि.मी. के ऊपर रक्त का नाड़ी दाब पहुंच जाने पर धमनियों में आयु वृद्धि तथा एथरोस्क्लीरोसिस की क्रिया आरम्भ हो जाती है।

सामान्य दशा में स्वास्थ्य से परिपूर्ण व्यक्तियों में रक्त का नाड़ी दाब रक्त के सिस्टोलिक दाब बढ़ने के कारण बढ़ता है। अतः यदि रक्त के सिस्टोलिक दाब को नियंत्रित कर लिया जाय तो रक्त का नाड़ी-दाब भी नियंत्रित

हो जायेगा। प्राणायाम, ध्यान तथा योग के द्वारा सक्रियता को जागृत अवस्था में भी घटाया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में शारीरिक श्रम को सम्भवतः इसीलिये अधिक महत्त्व दिया गया है। भारतीयों को यह बहुत पहले से पता था कि योग द्वारा मन की गति को नियंत्रित करना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होता है। मन की गति को नियंत्रित करने का अभिप्राय है मानसिक सक्रियता को नियंत्रित करना। और यही कारण है कि प्राणायाम, योग तथा ध्यान करने वाले व्यक्ति अधिक समय तक युवा बने रहते हैं।

श्रम जीवी व्यक्ति हृदय की कोरोनरी धमनियों से सम्बन्धित बीमारियों से कभी भी पीड़ित नहीं होते हैं। जानवरों की धमनियों में भी एथरोस्क्लीरोसिस नहीं होती है क्योंकि अपने उदर पोषण के लिये इन्हें बहुत अधिक श्रम करना पड़ता है। अतः आधुनिक सभ्यता में पले लोगों को तथा बुद्धिजीवियों को चिर यौवन प्राप्त करना है तो उन्हें शारीरिक श्रम को महत्व को समझना होगा। आधुनिक सभ्यता शारीरिक श्रम को हेय दृष्टि से देखती है। सभ्य समाज में शारीरिक श्रम के लिये कोई स्थान नही है इसीलिये कोरोनरी धमनियों से सम्बन्धित हृदय की बीमारी सभ्य समाज में फैलती जा रही हैं।

अभी तक यह समझा जाता था कि धमनियों में आयु वृद्धि के परिवर्त्तन तथा एथरोस्क्लीरोसिस मनुष्य की उम्र बढ़ने के कारण होता है तथा रक्त का नाड़ी दाब एवं सिस्टोलिक दाब धमनियों में एथरोस्क्लिरोसिस तथा आयु वृद्धि के परिवर्त्तनों के कारण बढ़ता है। यदि ऐसा होता तो समान आयु वर्ग के सभी लोगों में चाहे वे श्रमजीवी हो अथवा बुद्धिजीवी, रक्त का नाड़ी दाब समान होता, उनकी धमनियों के प्रत्यास्थ तन्तुओं में आयु वृद्धि के परिवर्तन भी समान होते और एथरोस्क्लीरोसिस के परिवर्तन भी एक समान होते। परन्तु यह सर्व विदित तथ्य है कि ऐसा नहीं है। कुछ व्यक्ति 50 वर्ष की आयु में ही वृद्ध हो जाते है तथा कुछ 80 वर्ष की आयु में भी युवा बने रहते हैं। यहाँ पर वृद्ध से तात्पर्य है धमनियों में प्रत्यास्थ तन्तुओं का नष्ट हो जाना तथा एथरोस्क्लोरोसिस हो जाना। इसी प्रकार युवा से तात्पर्य है धमनियों की मध्य पर्त्त में प्रत्यास्थ तन्तुओं का यथावत बने रहना तथा एथरोस्क्लीरोसिस का न होना। अतः यह स्पष्ट है कि रक्त का नाड़ी दाब बढ़ने से धमनियों में एथरोस्क्लीरोसिस तथा आयु वृद्धि की प्रक्रिया होती है। आयु वृद्धि की प्रक्रिया तथा धमनियों में एथरोस्क्लोरोसिस के कारण रक्त का नाड़ी-दाब नहीं बढ़ता है।

इस के समर्थन में दूसरा तर्क यह है कि किसी व्यक्ति की उम्र चाहे 80 वर्ष की क्यों न हो उसकी फुफ्फुस धमनी की मध्यपर्त में स्थित प्रत्यास्थ तन्तुओं में आयु वृद्धि के परिवर्तन नहीं होते हैं । इसकी आन्तरिक पर्त में एथरोमा भी नही बनता क्योंकि फुफ्फुस धमनी में रक्त का नाडी दाब 16 मि.मी. मर्करी होता है। यदि किसी व्यक्ति की उम्र का सम्बन्ध धमनियों में आयु वृद्धि की प्रक्रिया से होता तो व्यक्ति की उम्र बढ़ने के साथ-साथ फुफ्फुस धमनियाँ भी आयु वृद्धि की प्रक्रिया से प्रभावित होतीं। ज्ञातव्य है कि लेखक के परीक्षण परिणामों के आधार पर 60 मि.मी. मर्करी से ऊपर रक्त का नाड़ी दाब पहुंचने पर ही किसी धमनी में आयु वृद्धि के परिवर्तन आरम्भ होते हैं। अतः जब तक फुफ्फुस धमनियों में रक्त का नाड़ी दाब बढ़कर 60 मि.मी. मर्करी नहीं पहुंचता उनमें एथरोस्क्लोरोसिस तथा आयु वृद्धि के परिवर्तन नहीं होते। फुफ्फुस धमनियों में रक्त का नाड़ी दाब रक्त के उच्च फुफ्फुस दाब (पल्मोनरी हाइपरटेंशन) के समय बढ़ता है।

उपरोक्त सम्बन्ध में तीसरा तर्क यह है कि शिराओं में एथरोस्क्लोरोसिस तथा आयु वृद्धि के परिवर्तन कभी नहीं होते चाहे किसी व्यक्ति की उम्र कितनी ही क्यों न हो। चूंकि शिराओं

में रक्त का नाड़ी दाब शून्य होता है इनमें एथरोस्क्लोरोसिस तथा आयु वृद्धि के परिवर्तनों का प्रश्न ही नही उठता। यदि उम्र बढ़ने के साथ प्रत्यास्थ तन्तुओं में आयु वृद्धि के परिवर्तनों का सम्बन्ध होता तो व्यक्ति की उम्र के साथ शिराओं की मध्य पर्त में स्थित प्रत्यास्थ तन्तुओं का भी विखण्डन तथा विनष्टीकरण होना चाहिए था परन्तु ऐसा कभी नहीं होता। शिराओं में न तो एथरोस्क्लीरोसिस होती है और न आयु वृद्धि के परिवर्तन। अतः यह स्पष्ट है कि धमनियों में आयु वृद्धि के परिवर्तन रक्त के नाड़ी दाब के बढ़ने से होते हैं तथा धमनियों में आयु वृद्धि के परिवर्तनों के कारण रक्त का नाड़ी दाब नही बढ़ता है। इसी प्रकार फुफ्फुस धमनियों में एथरोस्क्लोरोसिस उच्च फुफ्फुस रक्त चाप के कारण रक्त का नाड़ी दाब बढ़ने के कारण होती है तथा फुफ्फुस धमनियों में एथरोस्क्लीरोसिस के कारण उच्च फुफ्फुस रक्त चाप नहीं उत्पन्न होता है।

अंत में धमनियों में आयु वृद्धि की प्रक्रिया के नियमों को इस प्रकार समझ सकते हैं:

(अ) आयु वृद्धि की प्रक्रिया को नियंत्रित तो किया जा सकता है परन्तु वृद्धावस्था से युवावस्था की ओर उन्मुख नही किया जा सकता है।

(ब) धमनियों में एथरोस्क्लीरोसिस के परिवर्तनों के बिना आयु वृद्धि की प्रक्रिया युवावस्था से वृद्धावस्था की ओर अग्रसर नहीं हो सकती है तथा धमनियों में एथरोस्क्लीरोसिस का वास्तविक कारण रक्त का बढ़ता हुआ नाड़ी-दाब है।

(स) मानसिक सक्रियता में वृद्धि के साथ शारीरिक सक्रियता में कमी के कारण रक्त के नाड़ी दाब में वृद्धि होती है जिसे मानसिक सक्रियता में कमी के साथ शारिरिक सक्रियता में वृद्धि करके नियंत्रित किया जा सकता है।

धूम्रपान एवं आत्महत्या

अमरीका के डॉ. डेविड हैमेनवे तथा उनके साथियों ने 30 से 55 आयु वर्ग की 11 अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाली लगभग 100,000 महिला नर्सों के ऊपर धूम्रपान के प्रभाव का अध्ययन किया। इस असाधारण एवं लम्बे चलने वाले अध्ययन में उन्होंने पाया कि धूम्रपान करने वाली महिलायों में धूम्रपान न करने वाली महिलायों की अपेक्षा आत्महत्या की प्रवृति अधिक होती है । (तालिका देखिये)

धूम्रपान से आत्महत्या की प्रवृति

प्रतिदिन सिगरेट	आत्महत्या प्रवृति
1-24	दो गुनी
25 से अधिक	चार गुनी

दूसरे अध्ययन में अमरीका के डॉ. करोल गैरीसन ने एक प्रश्नावली बना कर कक्षा 1 से 12 तक के 3,764 विद्यार्थियों को दी। उन्होंने भी पाया कि आत्महत्या का शराब, शबाव, मादक द्रव्यों तथा रंग भेद आदि से सीधा सम्बन्ध है। जो निम्न तालिका में दिखाया गया है।

मादक द्रव्यों आदि लेने वालों की आत्महत्या प्रवृति की स्थिति

आत्महत्या की स्थिति	प्रतिशत
प्रवृति	11
प्रयास	6
पूनः प्रयास	7.5

प्रस्तुति - **हरिओम मित्तल**

प्रोटीन और उसकी उपयोगिता

प्रो. सीताराम सिंह 'पंकज'
अध्यक्ष प्राणि विज्ञान विभाग,
के.एस.आर.कॉलेज,
सरायरंजन समस्तीपुर (बिहार)-848127

जीव द्रव्य की रचना का सबसे प्रमुख घटक प्रोटीन है। जीवद्रव्य में हुई टूट-फूट की मरम्मत में प्रोटीनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये कोशिकाओं के विभिन्न अंगक बनाते हैं और केन्द्रक में न्यूक्लियोप्रोटीन के रूप में पाये है। सच पूछिए तो जीव धारीयों के शरीर में होने वाली समस्त जैव रासायनिक क्रियाओं का नियमन प्रोटीन्स के द्वारा होता है। जीवों के शारीरिक संरचना में प्रोटीन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शायद यही कारण है इसे 'शरीर निर्माता' भी कहा गया है।

मानव शरीर कोशिकाओं के मिलने से बना है। इन कोशिकाओं में जीव द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) भरा होता है। मूल्डर नामक वैज्ञानिक ने सर्व प्रथम जीव द्रव्य में पाये जाने वाले एक महत्त्वपूर्ण कार्बनिक पदार्थ के लिए यूनानी शब्द ''प्रोटीन'' का प्रयोग किया जिसका अर्थ ही है सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। इसमें कोई दो मत नहीं कि प्रोटीन सर्व शक्तिमान की तरह हमारे शरीर में मौजूद है। गर्भावस्था में जीव के निर्माण से लेकर जीवन-पर्यन्त विकास में प्रोटीन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जीव द्रव्य में जल को छोड़कर प्रोटीन की मात्रा अन्य सभी पदार्थों की अपेक्षा अधिक होती है। इसका भार जीव द्रव्य का 15% तक होता है।

वस्तुतः प्रोटीन जटिल कार्बनिक यौगिक हैं जो अपेक्षाकृत अधिक अणु भार वाले होते हैं। इनका अणु भार छह हजार से एक करोड़ तक हो सकता है। प्रायः सभी प्रोटीन के अणु कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन के परमाणुओं से मिलकर बने होते हैं। वैसे, कुछ प्रोटीनों में फास्फोरस, लोहा, तांबा, सल्फर, आयोडिन या अन्य तत्व भी पाये जाते हैं। प्रोटीन के अणु में विभिन्न तत्वों के परमाणुओं की संख्या बहुत अधिक होती है। रक्त में मौजूद हीमोग्लोबिन के अणु में परमाणुओं की संख्या 9512 होती है।

रासायनिक संगठन के आधार पर प्रोटीनों को तीन श्रेणियों में रखा गया है:

1. सरल प्रोटीन : इसके अणु में केवल एमीनो अम्ल मौजूद रहता है। एलब्यूमिन्स, ग्लोब्यूलिन्स, ग्लोबिन्स, हिस्टोन्स, प्रोलैमिन, प्रोटैमिन्स आदि सरल प्रोटीन के उदाहरण हैं।

2. **संयुग्मित प्रोटीन** : इनमें एमीनो अम्लों के अतिरिक्त अन्य रासायनिक यौगिक भी पाये जाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं :

(i) **क्रोमो प्रोटीन** : ऐसे प्रोटीन में एमीनों अम्लों के अतिरिक्त रंगीन वर्णक पाये जाते हैं। इनके उदाहरण हैं, हीमोग्लोबीन, हीमोसाइनिन, साइटोक्रोम इत्यादि।

(ii) **ग्लाइको प्रोटीन** : प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के यौगिक हैं। लार का म्यूसिन ग्लाइको प्रोटीन का उदाहरण है।

(iii) **फास्फो प्रोटीन** : फास्फोरिक अम्ल के मिलने से फास्फो प्रोटीन का निर्माण होता है। दूध का केसिन तथा अंडपीत का विटेलिन ऐसे ही प्रोटीन के उदाहरण हैं।

(iv) **लाइपो प्रोटीन** : वसा तथा प्रोटीन के अणुओं के मिलने से लाइपो प्रोटीन बनता है। कोशिका झिल्ली लाइपो प्रोटीन की बनी होती है।

(v) **न्यूक्लियो प्रोटीन** : न्यूक्लिक एसिड (DNA तथा RNA) तथा प्रोटीन के मिलने से न्यूक्लियो प्रोटीन बनता है। ये कोशिका के केन्द्रक में पाये जाते हैं।

(vi) **मेटैल्लो प्रोटीन** : ऐसे प्रोटीन के अणु में धातु के आयन भी जुड़े रहते हैं। कार्बोनिक एनहाइड्रेज इंजाइम ऐसा ही प्रोटीन है जिसमें जस्ता के आयन जुड़े रहते हैं।

3. **व्युत्पन्न प्रोटीन** : ये प्राकृतिक प्रोटीनों के आंशिक पाचन के फलस्वरूप बनते हैं। पेप्टोन्स, पेप्टाइड्स, प्रोटीयोज़ेज़ आदि व्युत्पन्न प्रोटीनों के उदाहरण हैं।

अणुओं की आकृति के आधार पर प्रोटीन दो प्रकार के होते हैं :

1. **गोलाकार प्रोटीन** : ऐसे प्रोटीन के अणु गोलाकार या अंडाकार होते हैं। ये जल में घुलनशील होते हैं तथा इनके क्रिस्टल बन सकते हैं। इनमें संकुचनशीलता नहीं होती। अधिकांश प्रोटीन इसी श्रेणी में आते हैं। अंडे का ऐल्बुमिन, रक्त का हीमोग्लोबीन, अधिकांश एन्जाइम, विष तथा प्रतिविष, सभी गोलाकार प्रोटीनों के उदाहरण हैं। कुछ हारमोन्स में भी गोलाकार प्रोटीन के अंश होते हैं।

2. **रेशेदार प्रोटीन** : ऐसे प्रोटीन अणुओं की आकृति लम्बी छड़ जैसी होती है। ये कोशिका की विशिष्ट रचनाओं को अवलम्ब प्रदान करते हैं। ये जल में अघुलनशील होते हैं। इलैस्टिन, केरैटिन, कोलाजेन, सिल्क फाइब्रोइन, मायोसिन तथा फाइब्रिन आदि रेशेदार प्रोटीन के उदाहरण हैं। पेशियों में पाये जाने वाले मायोसिन में संकुचन की क्षमता भी होती है।

स्रोतों के आधार पर भी प्रोटीनों का वर्गीकरण किया जा सकता है। इस आधार पर प्रोटीन दो प्रकार के होते हैं :

1. **जंतु प्रोटीन** : जंतुओं से प्राप्त होने वाले प्रोटीनों को जंतु प्रोटीन कहते हैं जैसे मांस, मछली, दूध, अंडा इत्यादि।

2. **वनस्पति प्रोटीन** : पेड़-पौधों से प्राप्त होने वाले प्रोटीनों को वनस्पति प्रोटीन कहते हैं। विभिन्न प्रकार के अनाजों, दालों, बीन्स, गिरीदार फलों, हरी सब्जियों और ताजा फलों में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन मौजूद रहते हैं। सोयाबीन में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा होती है। शाकाहारियों के लिए यह मांस के समान पौष्टिक और प्रोटीन से भरपूर होता है।

भोज्य पदार्थ	प्रोटीन की मात्रा % में
गाय का दूध	3-4
मक्खन	4-8
अंडपीत	15-17
दालें	22-24
मांस तथा सोयाबीन	20-40

एमीनो अम्ल : जंतुओं के शरीर में सैकड़ों किस्म के प्रोटीन मिलते हैं। ये विभिन्न प्रकार के प्रोटीन एमीनो अम्लों के मिलने से बनते हैं। दूसरे शब्दों में प्रोटीन एमीनो अम्लों के बहुलक हैं अर्थात एमीनो अम्ल प्रोटीन की रचनात्मक इकाई हैं। रासायनिक दृष्टि से एमीनो अम्ल एक ऐसा कार्बनिक यौगिक है जिसमें एक या अधिक एमीनो अम्ल समूह मौजूद रहते हैं।

अब तक 25 एमीनो अम्लों का पता लगाया जा चुका है किंतु इनमें से 20 एमीनो अम्ल ही प्रोटीन के निर्माण में भाग लेते हैं। इन बीस एमीनों अम्लों में से दस को "आवश्यक एमीनो अम्ल" कहते हैं क्योंकि ये हमारे शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं और इनका निर्माण शरीर नहीं कर सकता, अतः हमारे भोजन में इनका रहना नितांत जरूरी है।

पौधों में सभी एमीनो अम्लों का निर्माण होता है; जबकि जंतु कोशिकाओं में कुछ खास एमीनो अम्लों के निर्माण की ही क्षमता होती है। यही कारण है कि जंतु आवश्यक एमीनो अम्लों को पादप स्रोतों से प्राप्त करते हैं। हमारे संतुलित आहार में सभी आवश्यक एमीनो अम्लों का रहना जरूरी है, क्योंकि उनके अभाव में शरीर का संतुलित विकास अवरुद्ध हो जाता है।

प्रोटीन-संश्लेषण : प्रोटीन का संश्लेषण एक जटिल प्रक्रिया है। शरीर की कोशिकाओं में निरंतर प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया होती रहती है। शरीर अपनी आवश्यकता के अनुरूप प्रोटीनों का निर्माण करता है। कोशिका में एक विशिष्ट संरचना होती है जिसे 'राइबोसोम' कहते हैं। यही प्रोटीनों का निर्माण स्थल होता है।

प्रोटीन संश्लेषण में RNA की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। तीन प्रकार के होते हैं; m-RNA, t-RNA तथा r-RNA। इन तीनों RNA के सहयोग से जीव द्रव्य स्थित राइबोसोम पर प्रोटीन का निर्माण होता है। केन्द्रक से m-RNA विशिष्ट संदेश लेकर जीव द्रव्य में आता है तथा t-RNA विभिन्न एमीनो अम्लों को पेप्टाइड बंधन से जोड़ता है। इस प्रकार प्रोटीन श्रृंखलाओं का सृजन होता है। विभिन्न प्रकार के एन्जाइम्स भी प्रोटीन संश्लेषण में मदद करते हैं।

प्रोटीन के कार्य : कोशिकाओं के जीव द्रव्य तथा विविध जीवित संरचनाओं का प्रोटीन एक महत्त्वपूर्ण घटक है। यह जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है और हमारे संतुलित आहार का आवश्यक भाग भी है।

प्रोटीन नई कोशिकाओं के निर्माण तथा टूटी-फूटी संरचनाओं की मरम्मत में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कोशिका विभाजन और कोशिका वृद्धि में भी मदद करता है। दूसरे शब्दों में प्रोटीन जीवों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए उत्तरदायी है। सभी एन्जाइम प्रोटीन होते हैं। एन्जाइम के रूप में प्रोटीन शरीर की विभिन्न उपापचयी क्रियाओं का निष्पादन करते हैं। यही नहीं, कुछ हारमोन जैसे इन्सुलीन और ग्लूकागोन कोर्बोहाइड्रेट उपापचय का नियंत्रण और नियमन भी करते हैं।

कुछ प्रोटीन एन्टीबॉडी का निर्माण करते हैं जो एन्टीजेन की अनुक्रिया में बनते हैं। इस तरह प्रोटीन शरीर की सुरक्षा प्रणाली के सजग प्रहरी भी हैं। लाइपो प्रोटीन के रूप में प्रोटीन कोशिका झिल्ली के निर्माण में भाग लेता है। हीमोग्लोबीन कोशिकाओं में ऑक्सीजन तथा साइटोक्रोम जैसा लौहयुक्त प्रोटीन इलेक्ट्रान-वाहक का कार्य करता है।

प्रोटीन की आवश्यक मात्रा : मनुष्य में प्रोटीन की आवश्यक मात्रा जलवायु, आयु और परिश्रम पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए सर्दी में अधिक प्रोटीन युक्त भोजन ग्रहण करना चाहिए जो शरीर को अधिक ऊर्जा प्रदान करे। इसी प्रकार, ज्यादा शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्तियों को भी अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। कम परिश्रम करने वाले मनुष्य को कम प्रोटीन लेना चाहिए। शिशुओं को भी प्रोटीन प्रचुर मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। इससे उनका शारीरिक और मानसिक विकास सुंदर होगा। प्रोटीन युक्त भोजन के अभाव में बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे बच्चे कमजोर और मंद बुद्धि के होते हैं। प्रोटीन के अभाव में होने वाला रोग "सूखारोग" (क्वाशरकौर) कहलाता है। इस रोग में शारीरिक वृद्धि रुक जाती है और मांस पेशियां ढीली हो जाती हैं। रोगी सुस्त, कमजोर और चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है।

जब प्रोटीन द्वारा कम कैलोरी प्राप्त होती है; तो 'मेरास्मस' नामक रोग उत्पन्न होता है। बच्चों में यह रोग मां के दूध की कमी के कारण होता

(शेष पृष्ठ 41 पर)

कार्बोहाइड्रेट्स और हमारा भोजन

बालकृष्ण काबरा ''एतेश''
सूर्या एपार्टमेंट, प्लाट नं. 11, रिंग रोड, राणा प्रताप नगर, नागपुर 440022

ऐसा कौन है जो आलू, चावल, ब्रैड आदि स्टार्च युक्त एवं चटपटा भोजन देख कर न कर सके। पर मोटा होने के भय से मन मसोस कर रह जायेगा। प्राय: कार्बोहाइड्रेट को मोटापे का मूल कारण माना जाता है। परन्तु आज की वैज्ञानिक खोजों ने तो पांसा ही पलट दिया है। कार्बोहाइड्रेट स्वयं मोटापा नहीं बढ़ाते है वरन् डाइबिटीज के नियंत्रण, हृदय रोगों तथा बड़ी आंतों के कैंसर से रक्षा करने में सहायक हैं। देखिये न कार्बोहाइड्रेट हमारे लिये कितने उपयोगी है।

गत कई वर्षों में स्टार्च युक्त आहारों को नकारात्मक दृष्टि से देखा गया। आलू, चावल, पेस्टा, रोटी, ब्रेड आदि के महत्त्व को कम आंका गया। इनके बारे में यह कहा गया कि इनसे मोटापा बढ़ता है। किंतु वर्तमान में हुई खोजों से आहार-वैज्ञानिकों ने इन भ्रांतियों का निवारण किया है और कार्बोहाइड्रेटों के पक्ष में चौंका देने वाले तथ्य उजागर किये हैं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिखाया है कि कार्बोहाइड्रेट स्वयं मोटापे के कारण नहीं होते, बल्कि इनसे शरीर को दीर्घ अवधि तक ऊर्जा मिलती रहती है ये वजन घटाने के साथ-साथ डाइबिटीज के नियंत्रण, हृदय रोगों तथा बड़ी आंत के कैंसर से रक्षा करने में सहायक हैं।

वास्तव में अनाज और आलू उसी भोजन-परिवार के हैं जिसके अंतर्गत गाजर, टमाटर और नाशपाती जैसे कार्बोहाइड्रेट हैं। सभी कार्बोहाइड्रेट शर्कराओं से बने होते हैं। कार्बोहाइड्रेट को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है; साधारण और जटिल। साधारण कार्बोहाइड्रेट के अंतर्गत ग्लूकोज (जिसमें शर्करा की एक इकाई होती है) या रासायनिक रूप से आपस में जुड़ी दो शर्कराओं की इकाइयाँ जैसे सूक्रोज (सामान्य शक्कर) या लेक्टोज (दूध में पाई जाने वाली शक्कर) आदि आते हैं। जटिल कार्बोहाइड्रेटों में सैकड़ों या हजारों शर्करा की इकाइयाँ होती हैं, जो रासायनिक रूप से एक दूसरे से जुड़ी होती है। शरीर इनका उपयोग तभी कर सकता है जब इनकी इकाइयाँ पाचन-नलिका में अलग-अलग इकाइयों में विभक्त हो जायं । जटिल कार्बोहाइड्रेट अनाजों और सब्जियों में पाए जाते हैं।

हमारा शरीर और कार्बोहाइड्रेट्स: हमारा शरीर ऊर्जा के लिए साधारण और जटिल दोनों प्रकार के कार्बोहाइड्रेटों का प्रयोग करता है। पाचन के दौरान शर्करा की इकाइयाँ ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाती हैं, जो मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र को ऊर्जा प्रदान करता है। ग्लूकोज पेशियों के संचालन, ऊतकों की मरम्मत, श्वसन और पाचन में भी सहायक होता है। फलों से प्राप्त होने वाली साधारण शर्कराएँ रक्त-धारा में तेजी से अवशोषित कर ली जाती हैं जिससे ऊर्जा का स्तर अस्थायी रूप से तुरंत बढ़ जाता है जो फिर कुछ समय बाद कम हो जाता है। किंतु अनाजों एवं सब्जियों में पाई जाने वाली शर्कराओं से एक स्थिर और संतुलित ऊर्जा-स्तर की प्राप्ति होती है। शिकागो के रश-प्रेसबाइटेरियन मेडिकल सेंटर के आहार विशेषज्ञ सूसी डब्लू रॉकवे का कहना है कि जटिल कार्बोहाइड्रेटों की यह एक अच्छी और विशेष बात है कि इनसे साधारण शर्कराओं की तरह ऊर्जा-स्तर अचानक नहीं बढ़ता, बल्कि इनसे रक्त-शर्करा में धीमी गति से वृद्धि होती है।

इसका कारण है कि जटिल कार्बोहाइड्रेटों को अवशोषण के पूर्व पाचन नलिका में अपनी इकाइयों में विभक्त होना आवश्यक होता है।

वजन घटाने में सहायक: इस तथ्य के बावजूद कि कार्बोहाइड्रेट शर्कराओं से बने होते हैं, ये शरीर का वजन घटाने में मदद करते हैं। कार्बोहाइड्रेट युक्त अधिकांश आहारों में रेशों (फाइबरों) की मात्रा अधिक होती है, जिन्हें मनुष्य पचा नहीं पाता। रेशे घुलनशील या अघुलनशील होते हैं ये दोनों ही स्वास्थ्यवर्धक भोजन के लिए आवश्यक हैं। फलों, सब्जियों, जई, जौ एवं फलियों (सेम और मटर) में पाए जानेवाले घुलनशील रेशे पानी में घुलने वाले होते हैं। ये रेशे जब पाचन तंत्र से होकर गुजरते हैं तो पानी का अवशोषण कर शीरे जैसा पदार्थ बनाते है। अनाजों और सब्जियों में अघुलनशील रेशे भी बहुत मात्रा में पाए जाते हैं जो पानी में नहीं घुल पाते। ये रेशे पानी को अपने साथ बांधे रखते हैं, जिससे मल की मात्रा बढ़ती है। इस प्रक्रिया से भोजन को पाचन-नलिका से होकर गुजरने में समय भी कम लगता है।

नार्थ केरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी के आहार विज्ञान विभाग के प्रमुख डाक्टर डेविड लाइन बैंक के अनुसार रेशे पच नहीं पाते, शरीर इनके भीतर की कैलोरी का उपयोग नहीं कर पाता। रेशों द्वारा अवशोषण भी कम होता है और इनकी कैलोरी-मात्रा भी कम होती है। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं, जिनसे कार्बोहाइड्रेट, शरीर का वजन घटाने में सहायक होते हैं। कार्बोहाइड्रेट आहार करीब-करीब चर्बी-रहित भी होते हैं, जबकि दुग्ध तथा मांस जैसे प्रोटीन युक्त आहारों में चर्बी भी पाई जाती है और एक ग्राम चर्बी में नौ कैलोरी ऊर्जा होती है। अनाज, सब्जियों और फलों का अधिक मात्रा में सेवन करना पड़ता है, जिससे इन्हें प्रोटीनों और चर्बी की अपेक्षा चबाने में समय भी अधिक लगता है। लाइनबैंक कहते हैं कि जटिल कार्बोहाइड्रेट युक्त आहारों से बिना अधिक कैलोरी के संतोष का अनुभव होता है। इन आहारों के कारण शरीर में इन्सुलिन का भी विमोचन होता है, जिससे लगता है कि भोजन किया गया है। इससे पूर्णता का अनुभव होता है।

ये पाषक और रोग नियंत्रक हैं: एक ओर जहाँ कार्बोहाइड्रेट युक्त आहारों में कैलोरी की मात्रा कम होती है वहीं दूसरी और ये आवश्यक पोषक तत्वों के उत्तम स्रोत हैं। अपनी पुस्तक ''गुड-फुड बुक'' में जेन ब्राडी लिखती हैं कि एक आलू द्वारा एक सामान्य वयस्क को दिन भर लगने वाली कैलोरी का 5 प्रतिशत अंश प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इससे विभिन्न दैनिक आवश्यकतायें भी पूरी होती हैं।

तालिका - एक आलू से प्राप्त पोषक तत्व

पोषक तत्त्व	%प्राप्ति
प्रोटीन	6
फास्फोरस, मैग्नीशियम्	8
तांबा, लोहा	10
आयोडीन	15
विटामिन बी	20
विटामिन सी	35
थियामिन	अल्प मात्रा में
राइबोफ्लोबिन	अल्प मात्रा में
जिंक	अल्प मात्रा में

ब्रॉडी का कहना है कि रोटी, पेस्टा, चावल, मक्का, जई और फलियों में प्रोटीन, विटामिन और खनिज भी होते हैं। फल और सब्जियाँ भी विटामिन और खनिज अच्छी मात्रा में प्रदान करते हैं जो अन्य आहारों में अल्प होते हैं।

वर्तमान में हुई खोजों से यह भी पता चलता है कि कार्बोहाइड्रेट कुछ रोगों के नियंत्रण में भी सहायता पहुँचाते हैं। डाइबिटीज के रोगी यदि जटिल कार्बोहाइड्रेट एवं रेशों की मात्रा अधिक

ग्रहण करें तो वे रक्त में शक्कर की मात्रा को बेहतर ढंग से नियंत्रित कर सकते हैं, जिससे इंसुलिन-उपचार की आवश्यकता में कमी आती है। किंतु यह बात वयस्क रोगियों को लागू होती है। जो अल्प-वयस्क या बाल-रोगी हैं, उनमें अधिक कार्बोहाइड्रेटों के सेवन से कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता।

आहार-विशेषज्ञ इस बात से भी सहमत हैं कि घुलनशील रेशों से रक्त में कोलेस्ट्राल का स्तर भी गिरता है जिससे हृदय रोगों का खतरा कम होता है। हाँलाकि, इसके कारण अभी तक स्पष्ट नहीं हुए हैं फिर भी अनुमान है कि घुलनशील रेशे पाचन-नलिका में कोलेस्ट्राल को बांध लेते हैं जिससे इसका अवशोषण नहीं हो पाता। अघुलनशील रेशों का कोलेस्ट्राल स्तर पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता।

जहाँ तक बड़ी आंत के कैंसर का प्रश्न है वैज्ञानिकों का कहना है कि इसका संबंध यकृत-अम्लों की उच्च-सांद्रता से है। कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि रेशे जल को रोके रखते हैं, जिससे इन अम्लों की शक्ति कम हो जाती है।

उच्च कार्बोहाइड्रेट आहारों से मिलने वाले अनेक स्वास्थ्य लाभों को देखते हुए अधिकांश आहार-विशेषज्ञों की यह सिफारिश है कि भोजन ऐसा होना चाहिए जिससे 25-30 प्रतिशत चर्बी, 10-15 प्रतिशत प्रोटीन और 50-60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट (मुख्यतः जटिल कार्बोहाइड्रेट) मिल सके।

पेस्टा सर्वोत्तम है: पेस्टा को श्रेष्ठ भोजन कहा गया है। लाइनबैंक के अनुसार इसमें सबसे कम चर्बी होती है, केवल तीन या चार प्रतिशत। एक कप पके हुए पेस्टा में करीब 200 कैलोरी ऊर्जा होती है। इससे करीब 40 ग्राम जटिल कार्बोहाइड्रेट की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, विटामिन बी$_1$, बी$_2$, नियासिन और आयरन होता है।

होल-व्हीट के पेस्टा में इन सबके अतिरिक्त अधिक रेशे भी प्राप्त होते हैं। आजकल पेस्टा को पालक, टमाटर या गाजर आदि से सजाया जाता है किंतु फिर भी उसके पोषक-गुण पारंपारिक पेस्टा जितने ही होते हैं। पेस्टा को इतना ही पकाना चाहिए कि यह कुछ-कुछ चबाने योग्य हो। पकाने के बाद इसे धोना नहीं चाहिए, इससे विटामिन 'बी' भी धुलकर बाहर हो जाते हैं।

कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के आहार विज्ञान के प्रोफेसर डा. जूडिथ एस.स्टर्न ने व्हाइट राइस के बदले ब्राउन राइस के प्रयोग पर बल दिया है। ब्राडन राइस में विटामिन बी$_1$, बी$_6$, और ई, नियासिन, पेण्टोथिनिक अम्ल और प्रचुर मात्रा में रेशे होते हैं। दूसरा स्थान 'वाइल्ड राइस' का है, इसमें भी विटामिन बी, खनिज और रेशे होते हैं। स्टर्न के अनुसार बिना छाने हुए आटे की रोटियों में अघुलनशील रेशों के अतिरिक्त विटामिन बी$_1$, बी$_2$, बी$_6$ और ई, नियासिन और खनिज अच्छी मात्रा में पाए जाते हैं। जई के आटे की रोटियों में भी ये सब पाए जाते हैं किंतु इसके रेशे घुलनशील होते हैं।

फलियों में भी प्रोटीन के अलावा आयरन, पोटेशियम, विटामिन बी, कैल्शियम और रेशे पाए जाते हैं। स्टर्न के अनुसार सोयाबीन सर्वोत्तम है। फलों और सब्जियों को, जब भी संभव हो, कच्चे रूप में सेवन करें तथा इनके छिलके न उतारें क्यों कि ये रेशों के अच्छे स्रोत हैं। यदि सब्जियों को पकाना हो तो इन्हें हल्की भाप में इस तरह पकाएँ कि रेशे और पोषक-तत्व नष्ट न हों। इसी तरह आहार-विशेषज्ञों के अनुसार परिशोधित शक्कर का प्रयोग कम से कम करना चाहिए। फलों का प्रयोग कर साधारण शर्करा की आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन स्वंय मोटापे का कारण नहीं होते किंतु सामान्यतः इन्हें क्रीम, मक्खन, घी और विभिन्न चटनियों को साथ परोसा

(शेष पृष्ठ 53 पर)

लाख रंजक:प्रकृति की एक अनमोल देन

डा. अजित कुमार सेन
कीट वैज्ञानिक
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान
नामकुम : रांची : बिहार - 834 010

प्राकृतिक रंजक, रासायनिक रंजकों की तुलना में कम विषैले व स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित पाये गये हैं। लाख-रंजक जिसे लाख के कीड़ों से प्राप्त किया जा सकता है। एक सुरक्षित प्राकृतिक रंजक है। इसे अभी हम विदेशों से आयात करते है। इस लेख में लाख-रंजक की उत्पादन विधियों का वर्णन किया गया है।

रंग जीवन का एक प्रमुख चिन्ह है। चाहे वह फूलों, फलों अथवा के प्राणियों या कीट-पतंगों का हो अथवा किसी सुन्दरी के पहने हुये कपड़ों या गहनों का, रंग हमेशा मानव हृदय को छू सा जाता है। यही कारण है कि मानव ने सभ्यता के प्रथम चरण से ही रंजक पेदार्थों को जीवन का एक मुख्य चिन्हस्वरूप माना है। सदा से ही मानव जाति नए-नए रंजक पदार्थों की खोज में लगी है। यदि हम प्राचीन साहित्य तथा गुफा चित्रों पर ध्यान दें तो देखेंगे कि वैदिक काल से भी पूर्व, प्रस्तर युग के लोगों को भी रंगों के महत्त्व का पता था। वे लोग प्रकृति से उपलब्ध विभिन्न वस्तुओं जैसे खनिज पदार्थों, फूलों, पराग, फलों, पत्तियों तथा कीट-पतंगों से तरह तरह के रंजक पदार्थ प्राप्त करते थे और अलग-अलग कार्यों में उनका उपयोग करते थे।

लाख रंजक इसी प्रकार का प्रकृति से उपलब्ध लाल रंग है जो वैदिक काल से ही मनुष्य के द्वारा प्रयुक्त होता आ रहा है एवं सम्भवतः भविष्य में भी होता रहेगा। पहले विश्व युद्ध के समय एवं द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद के वर्षों में रसायन-विज्ञान की नयी-नयी खोजों एवं उससे सम्बन्धित उद्योगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के सस्ते एवं चमकदार, संश्लिष्ट रंजक पदार्थ बाजार में आए और प्रकृति से उपलब्ध सभी प्रकार के प्राणिज रंगों की मांग तेजी से घटती चली गयी क्योंकि प्राणिज रंग, संश्लिष्ट रासायनिक रंजकों की तुलना में अधिक मूल्यवान, कम टिकाऊ एवं कम चमकदार होते है तथा प्राणिज रंजकों में विभिन्नताएं भी कम होती हैं। पर इन अवगुणों के बावजूद खान-पान की सामग्रियों तथा औषधियों एवं अधिक मूल्य के प्रसाधन सामग्रियों में प्राणिज रंजकों का व्यवहार ही स्वास्थ्य सम्मत माना गया है। क्योंकि सभी प्रकार के संश्लिष्ट रासायनिक रंजक अधिक या कम मात्रा में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो चुके हैं और इसी कारण सभी उन्नत देशों में इन्हें खान-पान, औषधियों एवं प्रसाधन सामग्रियों के व्यवहार में गैर कानूनी घोषित कर दिया गया है।

लाख एक प्राकृतिक राल है जिसे हम प्रकार के सूक्ष्म कीड़ों से प्राप्त करते है। ये कीड़े कुछ विशेष प्रकार के पेड़ों पर हो पलते हैं। भारत में प्राप्त लाख कीट दो प्रकार के हैं-कुसुमी तथा रंगीनी। कुसुमी कीड़े साधारणतः कुसुम (नागोली) के वृक्षों पर पलते हैं एवं रंगीनी कीड़े पलास (ढाक,परसा) या बेर (कोइर, कुल) के वृक्षों पर। वर्ष में इन दो प्रजाति के कीड़ों की दो जीवन चक्र से चार फसलें प्राप्त होती है जो क्रमशः अगहनी, जेठवी तथा कतकी एवं बैसाखी के नाम से जानी जाती हैं। ये कीड़े अपने पोषक वृक्षों की कोमल टहनियों पर कॉलोनी में बसते हैं एवं एक ही स्थान पर अपना जीवन चक्र भी पूरा करते है। लाख के कीड़ों से हमें राल, मोम एवं लाख रंजक या रंग जैसी बहुमूल्य सामाग्रियाँ प्राप्त होती है।

ऐसे लाख कीट भारत के अलावा आस पास के देशों जैसे पाकिस्तान, बंगला देश, बर्मा, चीन, वियतनाम, लागोस, थायलैण्ड एवं श्रीलंका में भी मिलते हैं। परंतु विश्व को बाजार में भारतीय लाख को सभी से अच्छा माना गया है जिसके कारण भारतीय लाख का अधिकांश भाग विदेशों को निर्यात

किया जाता है। यह प्राकृतिक सम्पदा विदेशी मुद्रा अर्जन में काफी बड़ा योगदान करती है।

लाख लाख कीट की उपत्वचा (क्युटिक्ल) के नीचे स्थित लाख ग्रंथियों का स्राव है जो शरीर से बाहर आने पर हवा तथा सूर्य के प्रकाश के सम्पर्क में सूखकर राल में रूपान्तरित हो जाता है। वस्तुतः यह राल कई प्रकार के बसा अम्लों (फेटी एसिड) का एक समांगी मिश्रण है जिसे साधारण रासायनिक या भौतिक विधियों द्वारा अलग करना सम्भव नहीं है। राल का आवरण लाख कीट को गर्मी, वर्षा तथा ठण्ड एवं शत्रुओं से रक्षा करता है। लाख से उत्पन्न मोम भी लाख कीट की उपत्वचा के नीचे स्थित कुछ विशेष ग्रन्थियों का स्राव है जो महीन धागों के रूप में लाख कीट के श्वसन तथा गुदा (एनल) छिद्र से कीट की जीवित अवस्था में हमेशा बाहर निकलता रहता है। लाख में करीब 6-7 प्रतिशत मोम होता है जो विदेशों से प्राप्त कारनोवा मोम का समकक्ष है एवं पालिश इत्यादि बनाने में बहुत ही उपयोगी है। यह मोम भी कई प्रकार के उच्च क्वथनांक वाले अलकोहलों का एक समांगी मिश्रण है। लाख कीट के जीवन काल में मोम के ये धागे उसके जीवन-दायी छिद्रों को साफ रखने के काम आते हैं।

लाख रंजक लाख कीट के शरीर का एक उपापचयी पदार्थ (मेटाबोलिक प्रोडक्ट) है, जो लाल रंग का होता है एवं लाख कीट के शरीर के अन्दर रुधिर लसिका (हिमोलिम्फ) में द्रव के रूप में पाया जाता है। इस रंजक पदार्थ के कारण लाख कीट साधारणतः लाल रंग के होते हैं। यह रंजक पदार्थ अब तक के ज्ञानानुसार कम से कम 5 प्रकार के बसा अम्लों (लैकाइक एसिड-''ए'', ''बी'', ''सी'', ''डी'' एवं ''ई'') का एक समांगी मिश्रण होता है। लैकाईक एसिड के सभी भाग निकट सम्बंधी एन्थाक्विनोन के व्युत्पन्न पदार्थ (डेरिवेटिव) हैं। भारत तथा अन्य उन्नत देशों के अब तक के शोध कार्यों से पता चला है कि यह रंजक पदार्थ मनुष्य के लिए किसी भी प्रकार से भी हानिकारक नहीं है। इसलिए यह रंग खान-पान की वस्तुओं प्रसाधन सामग्रियां एवं औषधियों में बिना किसी भय के इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार के कीड़ों से उपलब्ध रंजक पदार्थों में कोविनील एवं कारमेसिक एसिड भी है उत्पन्न करने वाले कीड़े विश्व के कई छोटे-छोटे स्थानों में सीमित है। इन कीड़ों को लाख कीटों भांति बृहत मात्रा में पाला नहीं जाता सकता है, इसलिए लाख कीट से प्राप्त लाख रंजक की मांग विश्व के बाजार में अधिक हो रही है। लाख में रंजक पदार्थ औसतन करीब 1.0 प्रतिशत मिलता है, जिसका लगभग आधा या कुछ अधिक, साधारण रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि लाख रंजक काफी कीमती (2000-2200 रु प्रति कि.ग्रा.) तथा उपयोगी पदार्थ हैं। छिले लाख से राल का उत्पादन करने वाले भारत के करीब 200/225 छोटे बड़े कारखाने लाख रंजक का भी उत्पादन कर सकते हैं, पर खेद है कि भारत में राल के साथ रंजक तैयार करनेवाला छोटा या बड़ा कोई भी कारखाना नहीं है। देश की जरूरत को पूरा करने हेतु प्रकार के निरापद रंजक का विदेशों से आयात किया जाता है या सस्ते हानिकारक रासायनिक रंजकों का इस्तेमाल होता है।

लाख से रंजक पदार्थ निकालने के लिए भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान ने दो विधियां विकसित की हैं। परिपक्व या कच्चा और लाख कीट की कॉलोनियों को पोषक वृक्षों से टहनियों के साथ काटने के पश्चात कीड़ों के साथ राल को टहनियों से छीलकर अलग कर दिया जाता है। छिले लाख को हल्के हल्के चूरा करने के बाद उससे लकड़ी के छोटे टुकड़ों को यथा सम्भव निकाल दिया जाता है। चूरा लाख को 3 प्रतिशत सोडा के जलीय घोल में करीब 30 मिनट तक भिगोने के बाद भिगोए हुए लाख को बार-बार साफ जल से मलमल कर तब तक धोया जाता है, जब तक कि उसमें से सोडा पूरा पूरा धुल न जाय। इस प्रकार धोने से छिली लाख से लाख कीट के शरीर के अंश, रंजक पदार्थ, मोम का कुछ भाग एवं अन्य वस्तुएं राल से अलग हो जाती है।

लाख रंजक उत्पादन हेतु लाख धुले सभी जल तथा सोडा के घोल से आंशिक परिष्कृत लाख

अलग छानकर निकालने के बाद, एक हौदे में इक्ट्ठा किया जाता है। छने घोल में कास्टिक सोडा का जलीय घोल मिलाकर पी.एच.मान-8 पर लाया जाता है। तत्पश्चात् उसमें कैलसियम क्लोराइड लगातार विलोडन के साथ मिलाते हैं। ऐसा करने से लाख रंजक का अघुलनशील कैलसियम लवण जल के नीचे अवशेष के रूप में आ जाता है। इस कैलसियम लवण को कई बार साफ जल से धोने के उपरांत, छानकर अलग कर लिया जाता है। इस लाख रंजक के क्लैसियम लवण को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा उपचार करते हैं तत्पश्चात् घोल में 30 मिनट तक जल वाष्प का पारण करने के उपरांत घोल को एक सप्ताह तक छोड़ दिया जाता है। जब घोल के नीचे सूई जैसे लाख रंजक के क्रिस्टल जमते हैं, इसे छानकर घोल से अलग किया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त परिशोधित लाख रंजक के क्रिस्टलोंको 50 से. तापमान पर सुखा लेते हैं।

लाख रंजक के उत्पादन की दूसरी विधि में छिले लाख धोए हुए क्षारीय घोल में स्थित लाख कीट के शरीर के अंश, मोम, राल एवं रंजक पदार्थ घोल के रूप में होता है। घोल में 0.1 प्रतिशत गन्धक के अम्ल का जलीय घोल मिलाने पर रंजक पदार्थ के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ अवक्षेपित हो जाते हैं जिन्हें छानकर अलग कर देते हैं। छने हुए लाख रंजक के अम्लीय घोल में चूना मिलाकर लाख रंजक का अघुलनशील कैलसियम लवण तैयार करते हैं तथा फिर इसे घुलनशील सोडियम लवण में बदलते के पश्चात घोल को धनायन विनिमय राल (कैटआयन एक्सरेन्ज रेजिन) से पारण (पास) कराने के बाद परिशोधित लाख रंजक का घोल प्राप्त होता है जिसके सांद्रीकरण से शुद्ध लाख रंजक प्राप्त होता है।

लाख रंजक तैयार करने की तीसरी प्रक्रिया में जीवित लाख कीट या लाख कीट के बच्चों (जो बीहन लाख को जाली के थैलों में रखकर प्राप्त किया जा सकता है) को अधिक मात्रा में जल के साथ पीसने पर लाख कीट का जलीय मिश्रण प्राप्त होता है। ट्राइक्लोरो एसेटिक एसिड मिलाने पर मिश्रण में स्थित प्रोटीन पदार्थ अवक्षेपित हो जाते हैं जिसे छानकर अलग कर देते हैं। छने हुये मिश्रण को क्लोरोफार्म या उध्व क्वथनांकी पेट्रोलियम ईथर के साथ सेपरेटिंग फनेल में लेकर अच्छी तरह विलोडन करने से मिश्रण में स्थित वसा एवं मोम पूरी तरह क्लोरोफार्म या पेट्रोलियम ईधर के घोल में आ जाता है जिसे सेपरेटिंग फनेल के नीचे से निकाल देते हैं और इस प्रकार जलीय मिश्रण से वसा, मोम तथा प्रोटीन अलग हो जाता है। चूँकि इस प्रक्रिया में जीवित लाख कीटों का व्यवहार किया गया है, इसलिए इस जलीय घोल में लाख कीट के शरीर में पाए जानेवाले मुक्त अमिनो अम्ल विशेष मात्रा में होता है। घोल में स्थित अमिनो अम्ल को अलग करने हेतु घोल को धनायन विनिमय राल से पारण कराकर विशुद्ध लाख रंजक का जलीय घोल प्राप्त करते है, जिसे उबलते पानी के ऊपर रखकर सूखा लाख रंजक प्राप्त करते हैं।

आई.एस.आई. द्वारा निर्धारित लाख रंजक के कुछ विशेष गुण मान इस प्रकार है:

(1) गलनांक	230 से ऊपर अंगार होते हुए;
(2) वाष्पशील पदार्थ	135 से. तापमान पर 6-7 प्रतिशत;
(3) भस्म अंश	1.0 प्रतिशत;
(4) विलेयता	(i) शीतल जल में 50-55 प्रतिशत;
	(ii) क्वथन जल में 98 प्रतिशत;
	(iii) क्वथन अलकोहल में 99 प्रतिशत;
(5) अम्ल मान	234-240 एवं
(6) विषैलापन-पूर्ण	रूप से निर्विष

तीसरी विधि से प्राप्त लाख रंजक की उल्लेखनीय गुणों में इसकी शीतल जल में विलेयता शत प्रतिशत है जो उपरोक्त पहली दो विधियों से प्राप्त रंजकों में नहीं पायी जाती है।

पहिली दोनों विधियों में सूखे हुई छिली घुले क्षारीय जल से रंजक प्राप्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन दो प्रक्रियाओं में मरे हुए लाख कीट से रंजक

(शेष पृष्ठ 56 पर)

मलेरिया नियंत्रण और मछलियों की भूमिका

डॉ. मनमोहन प्रकाश
स्नातकोत्तर प्राणीशास्त्र विभाग
श.च.आ. महाविद्यालय,
झालुआ-457661

मलेरिया एक ऐसा प्राण घातक रोग है जिसे सदा साधारण माना जाता रहा है। मच्छर द्वारा प्रसारित यह रोग आज भयावह रूप धारण कर चुका है। विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार विश्व में दो मौतें प्रति मिनट सिर्फ मलेरिया के कारण होती हैं। देखें इसके नियंत्रण में मछलियाँ क्या भूमिका अदा कर सकती हैं।

विगत 60 दशकों के सतत प्रयासों के बावजूद भी हम मलेरिया पर नियंत्रण नही कर सके हैं, कारण हमारे जन-मानस में मलेरिया की पहिचान किसी प्राण घातक रोग के रूप में न होकर एक साधारण से रोग के रूप में रही है जो मच्छरों के काटने से हो जाता है। आज प्रतिवर्ष न जाने कितने मनुष्यों की मृत्यु मलेरिया से होती है और न जाने कितने इसके बाद के प्रभाव द्वारा कई भयानक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इसके बार-बार के प्रकोप से मानव शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति का ह्रास होता है जिससे अन्य बीमारियों को मानव शरीर में स्थान बनाने में आसानी होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रपट के अनुसार पूरे विश्व में प्रति मिनिट दो बच्चे मलेरिया से मरते हैं। अमरीकी अनुसंधान संस्था के अनुसार इस समय विश्व में प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ लोग मलेरिया से जान गंवाते हैं। अब यह बीमारी भारत सहित विश्व के 100 से अधिक देशों में महामारी का रूप ले चुकी है (नई-दुनिया दैनिक 5 फरवरी एवं 20 जून 1992) और इस पर काबू पाए जाने की संभावना कम है।

मलेरिया शब्द इटेलियन के दो शब्दों से मिलकर बना है मैला-बुरी; एरिमा-वायु अर्थात 'बुरी वायु'। चार्ल्स लैवरेन (1880) ने प्लाज्मोडियम का पता लगाया जो मलेरिया बीमारी का कारक है। रिचर्ड (1892) ने बताया कि प्लाज्मोडियम मनुष्य के रुधिर में चुभाने तथा चूसनेवाले मुख अंग वाले एक कीट द्वारा पहुँचता है। रोनेल्ड रॉस (1895 1897) सर्व प्रथम प्लाज्मोडियम को ऊसिस्ट के रूप में मच्छर की आमाशय भित्ति में देखा। बी. ग्रासी. ए. विगनामी एवं जी. बैस्टिमनैली (1892) द्वारा यह प्रमाणित किया गया कि मादा ऐनोफिलीज़ मच्छर मनुष्य में मलेरिया के लिए वाहक का कार्य करते हैं। ग्रासी (1898) ने प्लाज्मोडियम के जीवन-चक्र का मच्छर (एनोफिलीज़) तथा मनुष्य में अध्ययन किया। मार्नहिम (1966) ने मलेरिया परजीवी की विस्तृत जानकारी दी है तथा रूजिन्सको (1969) द्वारा उसकी सूक्ष्म रचना प्रकाश डाला गया।

मानव में मलेरिया प्रोटोजोआ वर्ग के एक आंतरिक परजीवी 'प्लाज्मोडिम' की चार प्रजातियों प्ला. बाइवैक्स, प्ला. मलेरियाई, प्ला. ओवेली तथा प्ला. फैल्सीफैरम द्वारा होता है। इन चार प्रजातियों में से प्लाज्मोडियम फैल्सिफैरम सर्वाधिक घातक है। यह जीव अपना जीवन चक्र दो पोषकों मनुष्य तथा मच्छर में पूर्ण करता है। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में इसका संक्रमण मादा एनोफलीज मच्छर के काटने से होता है जो संक्रमण वाहक का कार्य करते हैं। ये मच्छर मनुष्य के खून को चूसते समय अपनी लार के साथ मलेरिया परजीवी की एक प्रवस्था को हजारों की संख्या में मनुष्य के खून में छोड़ देते हैं। भारत में मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों की प्रमुख प्रजातियों में एनोफलीज़ स्टीफन्सी, एनोफलीज़ सनडाइकस, एनोफलीज़ फिलीपेन्सी तथा एनोफलीज़ मिनियस हैं।

मलेरिया नियंत्रण के उपाय : मलेरिया नियंत्रण के संबंध में वैज्ञानिकों की मान्यता है कि यदि मच्छरों का सर्वनाश कर दिया जाय अथवा ऐसा प्रबंध किया जाय की मच्छर मनुष्य को नहीं काट सकें तो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में इसके संक्रमण को प्रतिबंधित किया जा सकता है। मलेरिया नियंत्रण के अब तक प्रचलित कुछ उपाय इस प्रकार हैं :-

1. **मच्छरों के जनन स्थानों नष्ट करना** : इस उपाय के अंतर्गत छोटे -2 गन्दे पानी के स्रोतों को पाट कर या फिर रसायन छिडक कर मच्छरों के रहने के अयोग्य बनाते हैं।

2. **कीट नाशकों का उपयोग** : सन् 1960 के दशक से इस विधि का उपयोग किया जा रहा है। इसमें कीट नाशकों (डी.डी.टी., बी.एच.सी. एवं डायल्ड्रिन आदि) का छिडकाव मच्छरों के निवास स्थान पर करके उन्हें नष्ट करने का प्रयास किया जाता है। किन्तु ऐसा देखने में आया है कि कीटनाशक के बार-बार प्रयोग से जहां एक ओर मच्छरों में इन कीटनाशक दवाओं के प्रति प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास हुआ है वही दूसरी ओर हमारा पर्यावरण प्रदूषित होता गया है जिसके प्रभाव से अन्य जीव-जन्तु तथा मनुष्य स्वंय भी अछूता नहीं रहा है। अतः प्रचलित कीट नाशकों का उपयोग अब उतना असर कारक एवं उपयोगी नहीं रहा है।

3. **प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग (जैविक तरीका)** : इस उपाय में मच्छरों या उनके लाखों को नष्ट करने के लिए उनके प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग किया जाता है जो इनका शिकार करने वाले होते हैं। मच्छरों तथा उनके लाखा के प्राकृतिक शत्रुओं में कीट (जलीय निम्फ, ड्रेग्न मक्खी आदि), मछलियां, जलीय सर्प (एटियम सिस्टोस्म आदि) तथा पक्षी (टर्पसिफोन पैराडिसाई, मस्सीकैपाटिकली, रिपीड्यूरा ऐल्बाकोलिस आदि) आदि आते हैं। ताजा अनुसंधानों के परिणाम से (अलेक्जेंडर वॉन) मलेरिया फैलाने वाले मच्छर के लार्वा को एवं सूक्ष्म जीवी-बैसिलस थरिजिएसिस वैरीस्राइलेंसिस एच-14 या संक्षेप में वी. टी. के प्रयोग से मार डाल जाता है। पर्यावरणीय दृष्टिसे यह तरीका काफी अनुकूल है।

4. **मॉस्किटो मैट तथा हीटर का उपयोग** : इस विधि से मच्छरों को भगाने के लिए एक छोटे हीटर पर पाइरेथ्राइड समूह के ऐलेथ्रीन जैसे कृत्रिम रसायनों से बनी टिकिया जिसे मॉस्किटो मैट कहते हैं, रखते हैं। हीटर की गर्मी से इस टिकिया का रसायन गैस में परिवर्तित होकर कमरे में फैलता है जिसके प्रभाव से या तो मच्छर मर जाते हैं या लकवा मार जाने के कारण निष्क्रिय हो जाते हैं। इस विधि की विशेषता है कि मनुष्य तथा अन्य स्तनधारी को इस रसायन से कोई हानि नहीं पहुंचती है क्योंकि एक 60 कि.ग्रा. वजन वाले व्यक्ति के लिए इस कीटनाशक की घातक मात्रा लगभग 90 ग्रा. है। एक रात भर चलने वाली टिकिया में लगभग 40 मिलीग्राम ऐलेथ्रिन कीट नाशक होता है। इस विधि के साथ समस्या यह है कि भारत जैसे गरीब देश में आम जनता द्वारा इसका प्रयोग कर पाना काफी कठिन है।

5. **इलेक्ट्रॉनिक युक्तियाँ** : इस युक्ति में 22 से 27 किलो हर्टज आवृति की अल्ट्रासोनिक ध्वनि से मादा मच्छर भाग जाते है। इस रेंज की ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपकरण अब बाजार में उपलब्ध है। इस यंत्र का प्रभाव मच्छरों पर धीरे-धीरे होता है। अतः इस यंत्र के कम से कम 10 दिन तक लगातार चालू रखने पर ही वह स्थान मच्छर विहीन हो सकता है।

एक अन्य इलेक्ट्रॉनिक युक्ति में पराबैगनी प्रकाश का उपयोग किया जाता है जो कि मच्छरों को अपनी ओर आकृर्षित करता है। इस प्रकाश को उत्पन्न करने वाली ट्यूब के समीप एक

विद्युत ग्रिड लगा होता है जिसके संपर्क में आते ही मच्छर बिजली के झटके के कारण तुरंत मर जाते हैं।

6. **प्रतिरोधक टीकों का उपयोग :** इस विधि के उपयोग के लिए प्रतिरोधक टीकों का विकास किया जा रहा है। इस क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षो में शोध कार्य प्रगति पर है। मलेरिया रिसर्च सेंटर, वाल्टरीड तथा एलिजाहॉल आयुर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान अस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक जिनमें डॉ. रोबिन एफ. एंडर्स प्रमुख हैं मीरोजोइट रोधी टीके विकसित करने में लगे हुए है (मीरोजोइट प्लाज्मोडियम परजीवी की मनुष्य के रक्त में पाई जानेवाली एक अवस्था है)। डॉ. गुस्ताव नोसल के अनुसार यदि इन टीकों का सफल परीक्षण हो जाता है तो मलेरिया पर पूरी तरह से नियंत्रण भले ही नही पाया जा सके पर इसके असर को काफी हद तक कम अवश्य किया जा सकता है। डॉ. जीओफ्रे टारगेट (स्कूल आप हाइजीन तथा ट्रापिकल मेडिसन लंदन विश्वविद्यालय) एक अलग किस्म के टीके की खोज में हैं जो मलेरिया परजीवी के लैंगिक प्रजनन को रोकने में सफल हो। आपने आंशिक सफलता के रूप में उपयोगी प्रतिजनों को विलगत कर लिया है तथा उन पर परीक्षण कर रहे हैं।

7. **अन्य उपाय :** उपयुक्त विधियों के अतिरिक्त मच्छरों से बचने के लिए कोई मच्छरदानी के अंदर सोता है, कोई बदन पर सरसों का तेल या मच्छर भगाने वाली क्रीम मलता है, कोई नीम के पत्ते जलाकर धुआँ करता है, तो कोई विशेष रसायनों से बनी अगरबत्तियां जलाता है। बड़े पैमाने पर मच्छर भगाने के लिए पाइरेथ्रम स्प्रे या मैलाथियोन फौगिंग का उपयोग किया जाता है।

मलेरिया उपचार से जुड़ी समस्या : आज वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों के सामने सबसे जटिल समस्या यह है कि मलेरिया के उपचार में सामान्यतः प्रयुक्त क्लोरोक्विन दवा अब अधिक असरकारक नहीं रह गयी है (प्रो. चार्ल्स कार्पेंटर, बाउन यूनिवर्सिटी, आइलैंड)। मध्यपूर्व, मध्य अमरीका और कैरिवियन द्वीप समूह के अतिरिक्त विश्व के सभी भागों में ऐसे मलेरिया कीटाणु फैल चुके है जिन पर इस दवा का कोई असर नही होता है। अमरीकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की अनुसंधान ऐजेंसी ने तो अब यह कहना प्रारंभ कर दिया है कि मलेरिया का प्रकोप सारे विश्व में अभूतपूर्ण स्तर तक पहुँच गया है और इस पर काबू पाए जाने की संभावना कम है।

मलेरिया निमंत्रण में मछलियों की भूमिका:

डॉ. फोर्ट द्वारा सर्वप्रथम ज्योर्जिया (अमरीका) में एक जलाशय को विशिष्ट मछलियों के प्रवेश से मच्छरों के लारवाओं से मुक्त किया। तदोपरान्त इस दिशा में कई शोध कार्य हुए।

मच्छरों के लारवा को प्रभावकारी ढंग से खाकर नष्ट करनेवाली मछली में निम्न विशेषताऐं होनी चाहिए

(1) आकार छोटा,

(2) स्वभाव कठोर,

(3) गहरे तथा उथले पाने में रहने की प्रवृति,

(4) रुके हुए पानी में स्वतंत्र रूप से प्रजनन करने की क्षमता,

(5) प्राकृतिक दुश्मनों के चुंगल से बचने की चतुराई,

(6) सतही भोजन ग्रहण करने की आदत तथा

(7) जीवन की किसी भी अवस्था में मच्छरों के लारवा को भोजन के रूप में ग्रहण करने की लालसा।

मछलियों का मलेरिया नियंत्रण में प्रभावकारी ढंग से उपयोग करने के लिए आवश्यक है कि

(1) मलेरिया फैलानेवाले मच्छरों की जातियों

तालिका : मच्छरों के लारवा को खाने वाली मछलियां तथा उनकी संभावित क्षमता

मछलियां (वंश का नाम)	लारवा खाने की क्षमता	गण	कुल	टिप्पणी
(अ) सतही भोजन ग्रहण करनेवाली				
(i) एपलोचिलस	++++++	एथरनीफॉर्मिस	सिप्रिनोडोनहिडी	आर्दश मच्छर नियंत्रक
(ii) गमबुसिमा	++++++	,, ,,	पोइसीलिडी	विदेशी मछली
(iii) ओरामजिएस	++++++	,, ,,	ओरामजिएटिडी	,, ,,
(iv) लेबिस्टीस	++++++	,, ,,	पोइसीलिडी	
(v) एफेनिमस	++++++	,, ,,	सिप्रिनोडोनटिडी	
(vi) होरेइक्थिस	++++++	,, ,,	होरेइक्थिटिडी	
(ब) अधो-सतही भोजन ग्रहण करनेवाली				
(i) डेनिओ	++++	सिप्रिनीफॉर्मिस	सिप्रिनीडी	
(ii) रसबोरा	++++	,, ,,	,,	
(iii) इसोमरा	++++	,, ,,	,,	
(iv) केरेसिमस	++++	,, ,,	,,	
(स) मध्य भाग से भोजन ग्रहण करनेवाली				
(i) पुनटिअस	+++	,, ,,	,,	मौका मिलने पर ही मच्छरों के लारवा का भक्षण करती हैं।
(ii) चांदा	+++	परसीफॉर्मिस	बेलोनटिडी	
(iii) कोलिशा	+++	,, ,,	ऐनाबेनटिडी	
(iv) एनाबस	+++	,, ,,	,,	
(v) बेडिस	+++	,, ,,	बेडीडी	
(द) बड़े आकार की मनुष्य द्वारा भोजन के रूप में ग्रहण की जानी वाली				इन मछलियों की फ्राई अवस्था ही मच्छरों के लारवा का भक्षण करती है।
(i) लेबिओ	+ +	सिप्रिनोफार्मिस	सिप्ररिनिडी	
(ii) कटला	+ +	परसीफार्मिस	,,	
(iii) मुगल	+ +	,, ,,	मुगलिडी	
(iv) टिनोफेरिंगोडोन	+ +	,, ,,	सिप्ररिनिडी	
(क) छोटे आकार की मछलियों को खानेवाली				इन मछलियों की फ्राई अवस्था मच्छरों
(i) वेलिगो	+	सिलूरीफॉर्मिस	सिलूरिडी	के लारवा का भक्षण करती है किन्तु व्यस्क
(ii) चाना	+	परसीफार्मिल	चानीडी	अवस्था मच्छरों के लारवा को खानेवाली
(iii) नोटेपटेरस	+	ओसटिओग्लोसिफॉर्मिस	नोटेपटेरिडो	मछलियों को भोजन के रूप में ग्रहण
(iv) मिस्टस	+	सिलूरीफॉर्मिस	बगेरिडी	करती हैं।

नोट : लारवा खाने की क्षमता का अनुमान मछलियों के भोजन ग्रहण के स्थान तथा भोजन ग्रहण करने की उत्सुकता के आधार पर लगाया गया है।

की बॉयलॉजी तथा बॉयनोमिक्स का विस्तृत ज्ञान हो,

(2) मच्छरों के प्रजनन क्षेत्रों का विस्तृत भौगोलिक विवरण उपलब्ध हो,

(3) जलीय स्रोत में (प्रजनन क्षेत्र) उपस्थित अन्य जीव-जन्तुओं का ज्ञान हो, और

(4) यदि संभव हो सके तो पानी की परिस्थिति की भी जानकारी होनी चाहिए।

मछलियों को मलेरिया नियंत्रण के रूप में उपयोग करने के लिए हम सर्वप्रथम मच्छरों के प्रजनन क्षेत्र वाले पानी के स्रोतों का पता लगाकर उसे सतही वनस्पति तथा परभक्षी मछलियों से मुक्त कर लेते हैं। इसके बाद उस क्षेत्र में उपस्थित मछलियों की प्रजतियों में से उन मछलियों की चुन लेते हैं जो ज्यादा प्रभावकारी होती हैं (तालिका देखें) यदि आवश्यक हो तो अन्य क्षेत्रों से प्रभावकारी मछलियों को लाकर जलाशय में छोड़ा जा सकता है। शोध से यह ज्ञात हुआ है कि मच्छरों के प्रति 421 सें.मी. २ प्रजनन क्षेत्र के लिए तीन ऐपलोचिलिस पंचक्स (प्रमुख मलेरिया नियंत्रक मछली) दो व्यस्क तथा एक बच्चा के अनुपात में अधिक असरकारक सिद्ध हुई हैं। यदि विभिन्न जातियों की मछलियों को एक साथ मलेरिया नियंत्रक के रूप में उपयोग करना है तो उक्त अनुपात को कम करना होगा।

मछलियों के मलेरिमा नियंत्रक के रूप में उपयोग से लाभ :

(i) मछलियों द्वारा मच्छरों के नियंत्रण से अन्य विधियों की अपेक्षा लागत नहीं के बराबर आती है।

(ii) मछलियों के उपयोग से मच्छरों में प्रतिरोधात्मक शक्ति के विकास जैसा खतरा नहीं रहता है।

(iii) कीटनाशकों के दुष्परिणमों से जीव-जन्तुओं तथा मनुष्यों को दूर रखा जा सकता है।

(iv) मच्छरों के नियंत्रण के साथ साथ पानी के स्रोत को प्रदूषण मुक्त रखने में मदद मिलती है।

(v) जलाशय में मलेरिया नियंत्रक मछलियों को पालने से बाद में इनका (मछलियों का) उपयोग भोज्य पदार्थ के रूप में किया जा सकता है।

मलेरिया के निरंतर विकराल होते रूप को दृष्टिगत रखते हुए हमें यह आवश्यक रूप से समझ लेना चाहिए कि मलेरिया नियंत्रण के लिये जब तक कारगर वेक्सीन का विकास नहीं हो जाता किसी एक उपाय की शरण में जाने से समस्या का निदान संभव नहीं है। अतः जितने भी अधिक से अधिक उपाय व विधियों द्वारा इस रोग पर नियंत्रत पाया जा सकता है, उन सभी को एक साथ प्रयोग में लाना चाहिऐ। मच्छर नियंत्रण मछलियों का उपयोग भी इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम हो सकता है। हमारे गांव विशेपकर जो मलेरिया आक्रान्त हैं तथा स्तरीय चिकित्सा-सुविधा रहित हैं, उनके जलाशयों एवं पोखरों आदि में इन विशिष्ट मछलियों को प्राथमिकता के आधार पर पालना ज्यादा लाभप्रद हो सकता है।

(पृष्ठ 30 का शेष)

है। ऐसे बच्चे की त्वचा झुर्रीदार तथा शरीर दुबला-पतला, कमजोर होता है।

विशेष परिस्थितियों जैसे गर्भावस्था में महिलाओं को प्रोटीन की अधिक मात्रा चाहिए जिससे गर्भस्थ शिशु का समुचित विकास हो सके। इसी प्रकार, किसी ऑपरेशन के बाद, घाव होने, हड्डी टूटने या बुखार आने पर व्यक्ति को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है। एक सामान्य सक्रिय महिला को प्रतिदिन 60 ग्राम, सामान्य सक्रिय पुरुष को 75-80 ग्राम, विकास काल में लड़के-लड़कियों को क्रमशः 100-110 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

प्रोटीन का आवश्यकता से अधिक प्रयोग भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। प्रोटीन शरीर निर्माता है। आवश्यकता पड़ने पर यह शरीर में ऊर्जा भी उत्पन्न करता है। प्रोटीन की आवश्यक मात्रा सर्व सुलभ हो इसके लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।

बायोगैस एक अक्षय ऊर्जा स्रोत

अमरीक सिंह एवं
अनिल कुमार सक्सेना
अभियांत्रिकी एवं तकनीकी संस्थान,
सीतापुर रोड, लखनऊ - 226 020

किसी भी देश की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए ऊर्जा एक महत्त्वपूर्ण निवेश है। देश में बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं कृषि कार्य कलापों के साथ साथ ऊर्जा की मांग भी बढ़ती जा रही है। इसे पूरा करने के लिए पारंपारिक ऊर्जा स्रोतों के साथ साथ अपारंपरिक एवं अक्षय ऊर्जा स्रोतों के विकास को भी समुचित प्राथमिकता देनी चाहिये। पवन, सौर एवं बायोगैस इत्यादि अपारंपरिक वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों को समाज के कमजोर वर्गों तक ले जाने के लिये सरकार विभिन्न प्रयास कर रही है। प्रस्तुत लेख में बायोगैस ऊर्जा के विभिन्न पहलुओं पर संक्षिप्त एवं सरल जानकारी दी गयी है।

भारत गॉवों का देश है और कृपि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की रीढ़। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में पशुधन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसका आर्थिक रूप से उपयोग किया जा सकता है। पशुधन का आर्थिक रूप से उपयोग गोबर गैस जैसे संयंत्र बनाकर बहुत प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। इससे न केवल नाइट्रोजन युक्त अच्छी खाद ही प्राप्त होगी अपितु प्राप्त गैस को ईंधन (खाना बनाने व रोशनी) के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। बायोगैस में 55 से 70 प्रतिशत तक ज्वलनशील मीथेन गैस होती है। इसे पशुओं के गोबर से ''डाइजेशन प्रक्रिया'' द्वारा ''बायोगैस संयंत्र'' में बनाया जाता है जिसे कि सामान्यतया ''गोबर गैस संयंत्र'' कहते हैं। इस प्रक्रिया में गोबर की उर्वरक क्षमता बढ़ जाती है। गोबर के अतिरिक्त बहुत से ऐसे कार्बनिक पदार्थ हैं, जिनसे भी बायोगैस का उत्पादन किया जा सकता है।

संयंत्र : बायोगैस संयंत्र में गोबर, मूत्र तथा घास - फूस और पशुओं के चारे के बारीक टुकड़ों रासायनिक रूप से अच्छी तरह सड़ाने के लिए एक निश्चित आकार का डायजेस्टर होता है। सामान्य तया यह कहा जा सकता है कि अगर बायोगैस संयंत्र का सही उपयोग किया जाय और उसका रख रखाव भी अच्छी तरह किया जाय तो वह अनेक वर्ष तक खराब न होगा और न हीं उत्पादन की गति में किसी प्रकार की ढील आने देगा।

मुख्यत: एक बायोगैस संयंत्र के निम्नलिखित भाग होते हैं :-

i. मिश्रण बनाने वाली टंकी और प्रवेश द्वार
ii. डाइजेस्टर
iii. गैस होल्डर अथवा गैस जमा रखने वाला गुम्बद
iv. निकास और कम्पोस्ट के लिए गडढा
v. गैस का मुख्य निकास और वाल्ब, पाइप लाइन, पानी की फिटिंग, गैस चूल्हा, लैम्प और बायोगैस से चलने वाले अन्य उपकरण।

यद्यपि बायोगैस संयंत्र की स्थापना हेतु विभिन्नताओं के कारण कोई निश्चित संख्या बताना कठिन है परन्तु साधारण रूप से दो घनमीटर वाले गैस संयंत्र लगाने के लिए दो पशुओं की आवश्यकता होती है। एक मध्यम आकारीय गाय, भैंस या बैल से प्रतिदिन औसतन 10 किलो ताजा गोबर प्राप्त होने की आशा की जा सकती है। पानी की उपलब्धता आस - पास होनी चाहिए क्योंकि साधारणतया गोबर को संयंत्र में डालने

के पहले बराबर ही पानी मिलाया जाता है। बायोगैस गोबर और आदमियों के मल मूत्र के अलावा वहाँ भी लगाया जा सकता है जहाँ चर्म प्रशोधन केन्द्र हैं और पर्याप्त मात्रा में चमड़े की छीजन मिल सकती है। ऐसे संयंत्रों में मृत पशुओं के पेट से निकलने वाले गोबर और अन्य बेकार वस्तुओं तथा सुअर खाने और मुर्गी पालन केन्द्रों का मल मूत्र भी काम में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त डिस्टिलरी उत्प्रवाह से भी बायोगैस का उत्पादन किया जाता है।

गैस संयंत्र के फटने या विस्फोट होने का कोई डर नही होता और दुर्गन्ध फैलने अथवा मक्खियों और कीड़े मकोड़े की वृद्धि की कोई समस्या नहीं क्योंकि डाईजेस्टेड स्लरी में काबनिक पदार्थ कम होते हैं। गैस संयंत्र को निवास स्थान के आस पास लगाने में किसी प्रकार की आपत्ति नही होती है। अत: गैस के उपयोग का प्रबन्ध संयंत्र के आसपास ही अर्थात निवास स्थान, सामुदायिक रसोईघर के निकट ही होना चाहिए। परन्तु गैस संयंत्र पानी के कुएं से 15 मीटर के अंदर नही बनाया जाना चाहिए क्योंकि कभी कभी यह संभव होता है कि संयंत्र का मिश्रण स्लरी छनकर कुएं के पानी से जा मिले।

बायोगैस प्लान्ट का निर्माण डायजेस्टर : यह एक प्रकार का गोलाकार कुआँ होता है जो जमीन खोदकर कांकरीट, ईंट और सीमेंट से निर्मित किया जाता है। कुएं की गहराई लगभग 3 से 6 मीटर तक होती है और उनका व्यास 1.35 से 6 मीटर तक होता है। कुएं के बीचों बीच एक विभाजक दीवार होती है। दोनों के निचले हिस्सों तक दो तिरछी सीमेंट नलिकाएं पहुँचायी जाती हैं। जिनका मुंह ऊपर की ओर उठा होता है। इसमें एक नलिका प्रवेश नलिका और दूसरी बाह्य मार्ग का काम करती है। गोबर और पानी को एक निश्चित अनुपात में मिलाया जाता है और मिश्रण को प्रवेश नलिका द्वारा भीतर पहुंचाया जाता है। कुआं इस प्रकार बनाया जाता है कि उसमें 30 से 50 दिन की सामग्री टिक सके। इस अवधि को रिटेंशन टाइम कहते है। प्रारम्भ से यह कुआं पूरी तरह भरा होता है ताकि जब कभी प्रवेश नलिका में कुछ सामग्री डाली जाय तो उतनी ही मात्रा में डाइजेस्टेड स्लरी बाह्य मार्ग नलिका से बाहर निकल सके। वातावरण में तापमान में होने वाली उतार चढ़ाव के आधार पर भी गोबर कुओं का अभिकल्पन किया जाता है।

बायोगैस कार्यक्रम का वृहत स्तर पर किये जाने वाले कार्यान्वयन को देखते हुए पी.वी.सी. के डाइजेस्टर तैयार किये गये हैं। इस प्रकार के गैस संयंत्र ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प समय में लगाये जा सकते हैं। इस प्रकार तैयार किये गये डायजेस्टर में मजबूती के साथ साथ उसकी दीवारों पर दरारें पड़ने की संभावना भी कम हो जाती है। संक्षारण की भी समस्या का निदान हो जाता है।

कार्य-प्रणाली : डाइजेस्टर में हवा न होने से घोल भभक उठता है और बायोगैस बनती है। संयंत्र के डिजाइन गैस होल्डर अथवा गैस भंडारण गुम्बद में गैस एकत्र होती है। गैस इस को एक पाइप लाइन के द्वारा प्रयोग स्थल तक ले जाया जाता है।

गैस होल्डर : हल्के इस्पात अथवा फाइबर ग्लास की चद्दरों से बना हुआ एक प्रकार का ड्रम कुएं की मुंह में टोपी की भांति लगा होता है। जो डाले गये गोबर पानी के मिश्रण से बुलबुलों के रूप में पैदा होने वाली गैस को एकत्रित करता है। गैस होल्डर ड्रम में गैस भर जाने पर ड्रम थोड़ा ऊपर उठता जाता है। इस प्रकार निर्मित गैस केवल नीचे की ओर खुली हुई रहती है तथा ऊपर लगाई गई नलिका द्वारा प्रयोग में लायी जाती है। ड्रम के अन्दर इकट्ठा होने वाली गैस ड्रम के वजन के बराबर के दबाव के अर्न्तगत रहती है। हालाकि यह दबाव बहुत कम (7.5 से 15 से.मी. जल स्तर के

बराबर) होता है परन्तु इतना दबाव गैस को रसोई के चूल्हे या लैम्प तक पहुँचाने की पर्याप्त क्षमता रखता है।

गैस संयंत्र के दो मुख्य उत्पादन हैं

1. **गैस** : गोबर गैस में लगभग 55 प्रतिशत मीथेन, 45 प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड है जो कोयले अथवा ब्यूटेन गैस से भिन्न होती है। इसलिए गोबर गैस का पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए विशेष बर्नरों और लैम्पों का उपयोग आवश्यक है। गोबर गैस को सिलिण्डरों में नही भरा जा सकता है क्योंकि इसको आसानी से द्रवित नहीं किया जा सकता है।

डीजल, पेट्रोल और मिट्टी के तेल से चलने वाले अंतर्दाह इंजनों को गैस इंजनों में बदलने के लिए एक विशेष उपकरण जोड़ना पड़ेगा। इन इंजनों में डीजल और गैस के उपयोग का अनुपात 20:80 तक होता है।

2. **उर्वरक** : संयंत्र से निकलने वाले डाइजेस्टेड स्लरी में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश आदि तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। इससे खेती को बहुत अधिक लाभ पहुंचता है। इसमें नाइट्रोजन दो प्रतिशत से अधिक होता है और यह तत्व ऐसी अवस्था में होता है जो मिट्टी में आसानी से घुल जाता है जिसे पौधों को शोषण करने आसानी होती है। यदि इसका उपयोग सिंचाई के पानी के साथ किया जाय तो फसलों को और अधिक लाभ मिलेगा। डाइजेस्टेड स्लरी के द्रव को, कम्पोस्ट गडढे में पत्तियों आदि बेकार पदार्थो के साथ सड़ाकर खाद बनायी जाती है। गैस संयंत्र के मिश्रण द्रव में पाये जाने वाले असंख्य बैक्टीरिया और पोषक सामग्रियां कम्पोस्ट खाद बनाने की प्रक्रिया में तेजी लाते हैं।

बायोगैस वाली खाद अमोनिया सल्फेट, सुपर फास्फेट आदि जैसे रसायनिक उर्वरकों के मिश्रण से बहुत अच्छा उर्वरक तैयार किया जाता है जो फसलों के पैदावार में रामवाण होता है।

बायोगैस संयंत्र का चुनाव : केन्द्र द्वारा स्वीकृत विभिन्न बायोगैस संयंत्र के डिजाइन निम्न तालिका में दिए गए हैं।

संयंत्र प्रकार	क्षमता (घनमीटर)
तैरते गैस होल्डर वाला (के वी ई सी) संयंत्र	1-10
स्थिर गुम्बर वाला जनता संयंत्र	1-6
प्रगति माडल	1-8
स्थिर गुम्बद वाला दीन बन्धु माडल	1-6
ग्लास फाइबर का के वी आई सी माडल	2-10

स्थिर गुम्बद वाला बायोगैस संयंत्र प्लान्ट कुशल कारीगरों द्वारा निर्धारित पद्धति के अनुसार बनाया जाना चाहिए जिसमें अच्छी किस्म की ईंटे और सीमेंन्ट आदि का इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि बाद में गुम्बद में दरार पड़ने और गैस रिसाव जैसी संरचनात्मक समस्याएं उत्पन्न न हों।

स्वच्छ शौचालयों को बायोगैस संयंत्रों के साथ जोड़ देने से न केवल स्वच्छता की स्थिति में सुधार होता है बल्कि मल को खाद के लिए भी सुरक्षित रखा जा सकता है। शौचालयों को बायोगैस संयंत्र से जोड़ते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि निकास टंकी में पानी का स्तर मल के घोल के निकास के स्तर से कम से कम 30 से.मी. ऊपर रहे। पानी इतना हो कि मिश्रण आवश्यकता से अधिक पतला न होने पायें अन्यथा उसका उचित रासायनिक डायजेशन प्रक्रम पूरा होने में अनेक वैज्ञानिक बाधाएं आती हैं।

सावधानियां :

1. सामान्य स्थितियों में बायोगैस संयंत्र का निर्माण

रसोईघर और पशुशाला के निकट करना चाहिए। गोबर गैस संयंत्र और रसोईघर बीच की दूरी 2घनमीटर वाले संयंत्र के लिए 10 मीटर, 3घनमीटर वाले, संयंत्र के लिए 15 मीटर, 4घन मीटर वाले संयंत्र के मामले में 20 मीटर, 8 घनमीटर के लिए 25 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। अनुमोदित दूरी से अधिक दूरियों पर बायोगैस संयंत्र लगाने के लिए पाइप बैठाने का खर्च अतिरिक्त होगा।

2. बायोगैस संयंत्र का चुनाव पशुओं का संख्या के आधार पर करना चाहिए।

3. निर्माण के बाद कुआँ 10 से 12 दिन तक उपचारित किया जाना चाहिए।

4. बायोगैस संयंत्र का निर्माण खुले स्थानों पर करना चाहिए जहाँ भरपूर सूर्य का प्रकाश मिलता रहे। कुएं की बाहरी दीवार पर ठीक से मिट्टी भरनी चाहिए।

5. 4 घनमीटर से 8 घनमीटर वाले संयंत्र के भरते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय विभाजन दीवार के दोनों ओर समान भराव "गाइड फ्रेम" तक हो। गोबर घोलकर दोनों ओर असमान होने से विभाजक दीवार या तो गिर सकती है या डिफार्म हो सकती है।

6. बायोगैस संयंत्र में गोबर और पानी को समान अनुपात में घोलकर भरना चाहिए।

7. जब गैस संयंत्र का कुआँ समान गोबर पानी के मिश्रण से लबालब भर जाय तब गाइड फ्रेम के पाइप पर गैस होल्डर ठीक से बैठा देना चाहिए तथा हैवी ड्यूटी गेट वाल्ब बंद रखना चाहिए।

8. गोबर और पानी के मिश्रण में मिट्टी नही होनी चाहिए अन्यथा यह घोल डालने के पाइप को निचले हिस्से में अवरुद्ध कर देगी जिसका प्रभाव गैस के उत्पादन पर पड़ता है।

9. गैस होल्डर या गैस पात्र को प्रतिदिन एक या दो बाद घुमाना चाहिए ताकि सतह पर पड़ने वाली पपड़ी टूट जाय। संयंत्र में कुएं की सतह पर पपड़ी पड़ने से गैस उत्पादन कम हो जाता है।

10. समय समय पर गैस पात्र को बाहर से स्वच्छ जल से साफ करते रहना चाहिए ताकि उस पर पपड़ी न पड़े। पकाने वाले बर्तन के बाहरी सतह पर किसी प्रकार का लेपन नही लगाना चाहिए।

11. बायोगैस के लिए बनाये गये विशेष प्रकार के चूल्हों का ही उपयोग करना चाहिए। खुले में चूल्हे को नही जलाना चाहिए अन्यथा काफी मात्रा में आंच संबंधी नुकसान होगा।

12. चूल्हे में लगे हवा नियंत्रक को दांए बांए घुमाकर लौ को ठीक करना चाहिए ताकि जिससे नीली लौ प्राप्त हो। अधिकतम ताप मिलेगा। जब लौ पीले रंग के हो तो चूल्हे का उपयोग नही करना चाहिए।

13. प्रति 4 से 5 दिन बाद गैस की पाइप लाइन में इकट्ठे हो गये पानी को बहा देना चाहिए। गैस पाइप में पानी एकत्रित नहीं होने देना चाहिए अन्यथा अपेक्षित गैस का दबाव नहीं मिल पायेगा। साथ में गैस से उचित मात्रा में ऊष्मा भी नहीं मिलेगी।

14. गैस पात्र की बाहर 14 वर्ष में कम से कम एक बार काले आयल पेन्ट से रंगाई कर देनी चाहिए ताकि जंग न लगने पाये। इससे इसकी आयु अवधि बढ़ती है और होल्डर को सूर्य से अधिकतम गर्मी प्राप्त होती है।

बाल विज्ञान

बर्फ के पिघलने पर क्या पानी का तल अपरिवर्तित रहता है?

श्याम लाल धीमान, प्रवक्ता भौतिकी,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कोटद्वार (गढ़वाल)

जब बर्फ किसी बर्तन में रखे पानी पर तैर रही होती है तो आर्कमिडीज के सिद्धान्तानुसार वह अपने भार के बराबर पानी हटाती है। इस प्रकार तैरती अवस्था में बर्फ (या किसी भी वस्तु का) का आभासी भार शून्य होता है। तैरती हुई अवस्था में बर्फ के आठ भाग पानी के तल के नीचे तथा केवल एक भाग ही उपर रहता है। दूसरे शब्दों में बर्फ का पानी के सापेक्ष घनत्व 8/9 होता है। यानि बर्फ के 9 भाग पिघलने पर केवल 8 भागों के बराबर ही पानी बनता है। इस प्रकार बर्फ पिघलने पर उस स्थान की आपूर्ति कर देगी जिसको पिघलने से पूर्व वह हटा रही थी। इस प्रकार पानी का तल अप्रभावित रहेगा।

बर्फ के अन्दर कोई जल से भारी वस्तु (लोहे की कील आदि) तैरती अवस्था में पानी का अधिक भाग हटाती है। अर्थात अब वह 8 भाग से भी अधिक पानी हटाने लगती है। चूंकि बर्फ के पूरा पिघलने पर केवल 8 भाग ही पानी बनता है अतः इस दशा में बर्फ द्वारा हटाये गये स्थान की आपूर्ति नहीं हो पाती है और पानी का तल नीचे गिर जाता है।

परन्तु यदि बर्फ के अन्दर कोई जल से कम घनत्व की वस्तु रखी होती है तो इस दशा में प्रथम दशा की भांति बर्तन में पानी का तल अपरिवर्तित रहता है। इसका कारण यह है कि बर्फ के पिघलने के पूर्व और बाद में पानी से हल्की वस्तु (जैसे कार्क) अपने भार के बराबर पानी हटाता है। अतः पिघलने पर वस्तु स्थिति बनी रहती है और पानी का तल अपरिवर्तित रहता है।

इसके विपरीत बर्फ को हाइड्रोजन गैस से भरे गब्बारे से सम्बद्ध करके पानी पर तैरा दिया जाये अवस्था में पानी का तल गिरेगा, बढ़ेगा। इस अवस्था में गुब्बारे पर उपर की ओर वायु का उत्पलावन बल लगता है। जिससे बर्फ का आभासी भार पूर्व के सापेक्ष कम हो जाता है और बर्फ अपने वास्तविक भार से कम

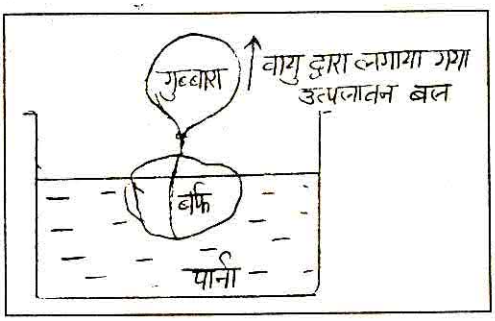

चित्र - वायु द्वारा लगाया गया उत्पलावन बल बर्फ के आभासी भार को कम करता है। जिसके कारण बर्फ के पिघलने पर पानी का तल बढ़ जाता है।

पानी हटाती है। यानिकि बर्फ का 8 भाग से कम भाग पानी में डूबा रहता है। इस प्रकार बर्फ के पिघलने पर उसके कुल 9 भागों से 8 भाग पानी बनेगा। यह उस स्थान की तो आपूर्ति करेगा ही जो पिघलने से पूर्व बर्फ द्वारा हटाया गया था बल्कि उसका कुछ भाग बचा रहेगा जो पानी के तल को बढ़ाने में काम आयेगा। अतः वायु द्वारा लगाया गया उत्पलावन बल बर्फ के आभासी भार को कम करता है। जिसके कारण बर्फ के पिघलने पर पानी का तल बढ़ जाता है।

एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उडेलने पर दूध ठंडा क्यों हो जाता है?

हम दूध को ठंडा करने के लिए उसे एक बर्तन से दूसरे बर्तन में बारी-बारी से उडेलते रहते हैं और दूध ठंडा हो जाता है। प्रायः दुकानों पर दूध ठंडा करने की यह विधि देखने को मिल जाती है। आइये पता लगायें ऐसा क्यों होता है?

जब किसी द्रव को ठंडा या गर्म किया जाता है तो उसमें ऊष्मा स्थानान्तरण की संवहन विधि का उपयोग होता है। जब द्रव को नीचे से गर्म किया जाता है तो बर्तन की तली में स्थित द्रव के अणु ऊष्मा लेकर ऊपर उठते हैं और ऊपर के अणु नीचे आ जाते हैं। नीचे आने वाले ये अणु भी ऊष्मा पाकर पुनः ऊपर उठते हैं और ऊपर वाले नीचे आ जाते हैं। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक की द्रव उबलने न लगे। द्रवों के गर्म होने की इस विधि को संवहन विधि कहा जाता है।

अब मान लीजिये हम द्रव को ऊपर से गर्म करना शुरू करते हैं। ऊष्मा पाकर इस प्रक्रिया में द्रव की ऊपरी सतह गर्म हो जायेगी परन्तु अतः ये तो अधिक ऊर्जा वाले अणु केवल द्रव पृष्ठ पर ही ठहर सकते हैं। जिससे ऊपरी सतह का द्रव तो गर्म हो जाता है जब कि नीचे का द्रव ठंडा ही रहता है। भले ही ऊपरी सतह का द्रव उबलने ही क्यो न लगे, नीचे का द्रव ठंडा ही रहता है। बहुत कम ऊष्मा चालन या विकिरण विधि द्वारा नीचे के द्रव को गर्म कर पाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि द्रव को ऊपर से गर्म नहीं किया जा सकता।

अब हम अपने मूल प्रश्न पर लौट आते हैं। जिस प्रकार द्रव केवल नीचे गर्म करने पर संवहन धाराओं द्वारा गर्म होता है उसी प्रकार वह संवहन धाराओं द्वारा ठंडा भी होता है। ये संवहन धारायें दूध या किसी अन्य द्रव को एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उडेलने पर बनती हैं। होता यह है कि जब दूध को उडेला जाता है तो उसके सम्पर्क में आयी हवा गर्म होकर ऊपर उठती है और ऊपर की हवा स्थान लेने के लिए ठंडी हवा नीचे आ जाती है। इस प्रकार गर्म दूध से ऊष्मा का स्थानान्तरण वाह्य वायुमंडल में होता रहता है और दूध ठंडा हो जाता है। संवहन धाराओं के कारण ही पृथ्वी के सामीप्य वाली वायु पहले गर्म होती है और बाद में ऊपरी वायु परतें गर्म होती हैं।

इसके अतिरिक्त उडेलने की प्रक्रिया में दूध में से पानी के अणु अपनी स्थिति दोड़कर वायु में जा मिलते हैं। इससे काफी ऊर्जा दूध से वायुमंडल में स्थानान्तरित हो जाती है। एक ग्राम पानी को इस प्रक्रिया द्वारा वायु में मिलने से दूध से लगभग 540 कैलोरी ऊष्मा स्थानान्तरित होती है। यदि हम यह मान लें कि गिलास में 250 ग्राम दूध आता है और उसमें से 10 ग्राम दूध वाष्पन की प्रक्रिया से कम हो जाता है। यदि उसकी विशिष्ट ऊष्मा 1 कैलोरी प्रति ग्राम प्रति डिग्री सेंटीग्रेड मान लें तो दूध का ताप लगभग 20° सें. कम हो जायेगा।

केवल गिलास में दूध के यों ही रखा रहने पर वायु में संवहन धारायें कम उत्पन्न होती हैं। दूध के ठंडा होने की प्रक्रिया में उसकी ऊपरी सतह पर मलाई जम जाती है। इससे न केवल संवहन धाराओं के बनने में ही रुकावट आती है अपितु वाष्पन की प्रक्रिया में भी बाधा पड़ती है। इतना ही नहीं वाष्पन जो द्रव की सतह के अनुक्रमानुपाती होता है, गिलास के यों ही रखा रहने देने पर और भी कम हो जाता है।

टिप्पणियां

1. पोस्टाग्लैन्डिन: अद्भुत जैव सक्रिय पदार्थ

आदि काल से ही मनुष्य रोगों के उपचार हेतु विभिन्न प्रकार की औषधियों का उपयोग करता रहा है। जड़ी-बूटियों तथा खनिज पदार्थों के उपयोग के पश्चात् आज अनेक चमत्कारी औषधियॉ संश्लेपित की जा चुकी हैं। इनके उपयोग से लगभग सभी रोगों का इलाज सम्भव है। हाल ही में कुछ वर्ष पूर्व पोस्टाग्लैन्डिन नामक जैव सक्रिय पदार्थों के एक नए वर्ग ने चिकित्सा शास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इन पदार्थों के अद्भुत औषधोपयोगी गुणों के कारण इनकी खोज के उपरान्त इन पर भी निरन्तर शोध कार्य चल रहा है। वैज्ञानिकों को पूर्ण विश्वास है कि पोस्टाग्लैन्डिन मानव स्वास्थ्य सम्बन्धी कई जटिल समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध होंगे।

यद्यपि पोस्टाग्लैन्डिनों की ओर हाल में ही सक्रियता से वैज्ञानिकों का ध्यान गया है, परन्तु बहुत पहले से ही उन्हें इन पदार्थों के अस्तित्व की जानकारी थी। सर्व प्रथम 1913 में बैटेज तथा बॉयले ने मनुष्य की प्रोस्टेट ग्रन्थि के तन्तुओं के निष्कर्ष का कुत्तों के रक्त दाब पर अवसादी प्रभाव देखा। 1930 में न्यूयार्क के दो स्त्री रोग विशेपज्ञों कुर्जरोक तथा लीब ने पाया कि वीर्य के प्रभाव के कारण गर्भाशय की मासपेशियों का तीव्रता से संकुलन तथा शिथिलन हो जाता है जो वीर्य में उपस्थित जैव सक्रिय पदार्थ पोस्टाग्लैन्डिन के कारण होती है। प्रोस्टेट ग्रन्थि के निष्कर्प से प्राप्त होने के कारण इस पदार्थ को पोस्टाग्लैन्डिल (PG) नाम दिया गया। बाद के अन्वेपणों से ज्ञात हुआ कि यह पदार्थ मुख्यतः शुक्राशय वेसीकल में तथा अनेक अन्य तन्तुओं जैसे केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र, ऐड्रीनल ग्रन्थि, यकृत, वृक्कों तथा आंतों आदि के तन्तुओं में भी पाया जाता है।

पोस्टाग्लैन्डिल एक संमांगी योगिक नहीं अपितु परस्पर घनिष्टता से सम्बन्धित योगिकों का सम्मिश्रण है। 1960 में बर्गस्ट्रोम तथा जोवाल ने भेड़ की प्रोस्टेट ग्रन्थियों से तीन जैव सक्रिय योगिकों को प्राप्त किया। इन्हें पोस्टाग्लैन्डिन PGE_1, PGE_2, तथा PGE_3 अथवा E_1, E_2, E_3 नाम दिये गये।

वर्गीकरण तथा रासायनिक संरचना : संरचना के आधार पर पोस्टाग्लैन्डिनों को ए,बी,सी,ई तथा एफ वर्गों में विभाजित किया गया है। ए,बी,सी, वर्ग के योगिकों की संरचना में साइक्लोपेन्टेन वलय के अन्दर द्विबन्ध तथा कीटो समूह अलग-अलग स्थितियों में स्थित रहते हैं। ई वर्ग के अन्तर्गत आने वाले योगिकों में साइक्लोपेन्टेन वलय में हाइड्रॉक्सिल तथा कीटो समूह उपस्थित होते हैं। ये β-हाइड्रॉक्सी कीटोन हैं। एफ वर्ग के पोस्टाग्लैन्डिनों में साइक्लोपेन्टेन वलय में प्रथम तथा तृतीय स्थान पर हाइड्रॉक्सिल समूह उपस्थित रहते हैं। अतः इस आधार पर ये 1,3 डाइऑल हैं। पार्श्व श्रृंखलाओं में द्विबन्धों की संख्या तथा स्थिति के आधार पर इन वर्गों के योगिकों को पुनः उपवर्गों में विभाजित किया गया है, जैसे ई वर्ग के योगिक, एफ-1, एफ-2 और एफ-3 उपवर्गों में विभाजित हैं।

सभी पोस्टाग्लैन्डिनों का मूल योगिक प्रोस्टेनोइक अम्ल है। अतः इन्हें प्रोस्टोनोइक अम्ल के व्युत्पन्न भी कहा जा सकता है। प्रकृति उपलब्ध पोस्टाग्लैन्डिनों की संख्या कम से कम 14 है। इनमें से छः PGE_1, PGE_2, PGE_3, $PGF_{1\alpha}$, $PGF_{2\alpha}$ तथा $PGF_{3\alpha}$ प्राथमिक पोस्टाग्लैन्डिन है। शेष आठ पोस्टाग्लैन्डिन इनके उपापचयित योगिक हैं। मूल योगिक प्रोस्टेनोइक अम्ल संरचना चित्र में दी गई है।

शरीर क्रियात्मक प्रभाव : पोस्टाग्लैन्डिन प्रकृति उपलब्ध पदार्थों में सबसे अधिक जैव सक्रिय है। तन्तुओं में इनका भंडारण नहीं होता है। शरीर की आवश्यकतानुसार ही ये उत्पन्न होते हैं और स्थानीय रूप से कार्य करने के बाद विशिष्ट एन्जाइमों द्वारा स्वतः ही निष्क्रिय हो जाते हैं। इसलिये इन्हें ''स्थानीय'' हार्मोन भी कहा जा सकता है। पोस्टाग्लैन्डिन शरीर की रासायनिक व्यवस्था में भाग लेते हैं और तांत्रिका संचारण का कार्य भी करते हैं। सूजन तथा जलन में मध्यस्थ योगिक भी यही होते हैं। इसी कारण कुछ प्रति-प्रदाह पीड़ापहारी औषधियाँ जैसे ऐस्पीरीन शरीर में पोस्टाग्लैन्डिन संश्लेषण को कम करके अपना प्रभाव डालती हैं।

पोस्टाग्लैन्डिन शरीर पर कई प्रकार के प्रभाव डालते हैं। ये रक्त-दाब को कम करते हैं, गर्भाशय तथा श्वसनी आदि चिकनी मासपेशियों का संकुलन तथा शिथिलन करते है, पिट्यूटरी ग्रन्थि पर प्रभाव डालकर ये पिट्यूटरी हार्मोनों की उत्पत्ति में वृद्धि करते हैं। यह देखा गया है कि ऐस्पीरीन और इन्डोमेथासिन आदि प्रति-पोस्टाग्लैन्डिन औषधियों के प्रयोग से शरीर में पिट्यूटरी हार्मोनों का उत्पादन रुक जाता है। श्वसन, हृदवाहिका, वृक्कीय, पाचक तथा जनन तन्त्रों की क्रियाशीलता को नियमित रखने में भी पोस्टाग्लैन्डिनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह देखा गया है कि पोस्टाग्लैन्डिन F की अपेक्षा पोस्टाग्लैन्डिन E अधिक क्रियाशील है।

चमत्कारिक जैव सक्रियता के कारण पोस्टाग्लैन्डिन औषधि रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इनके मुख्य उपयोग निम्मलिखित हैं।

i. गर्भपात-प्रेरण : गर्भपात हेतु पोस्टाग्लैन्डिनों का प्रयोग मौखिक रूप से, योनि मार्ग से अथवा गर्भाशय मार्ग से किया जाता है। मौखिक पोस्टाग्लैन्डिन अत्यन्त प्रभावकारी है, परन्तु गर्भाशय को उत्तेजित करने हेतु आवश्यक मात्रा

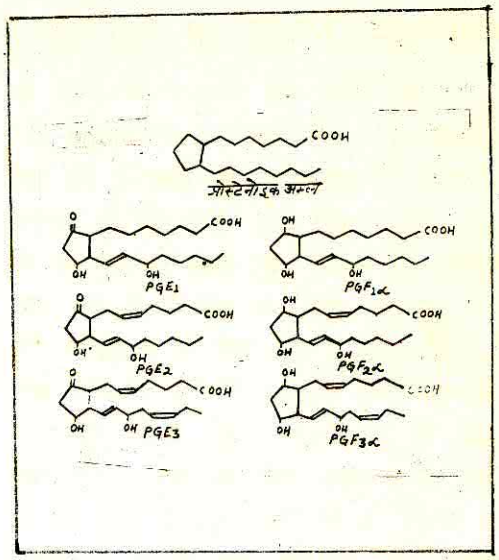

को ग्रहण करने पर वमन तथा अतिसार हो जाते हैं। इन औषधियों में अल्प मात्रा में ऑक्सीटोसिन मिलाने पर ये कुप्रभाव समाप्त हो जाते हैं।

ii. प्रसव-पीड़ा प्रेरण : पोस्टाग्लैन्डिन अन्तः शिरा अथवा मौखिक रूप से प्रयोग करने पर प्रसव पीड़ा प्रेरित करने में सक्षम हैं।

iii. गर्भ-निरोध : गर्भ-निरोध हेतु पोस्टाग्लैन्डिन योनि मार्ग से प्रविष्ट किये जाते है। इनके द्वारा गर्भाशय भित्तियों का तीव्र संकुलन होने पर निषेचित अण्डाणु का शीघ्र विस्थापन हो जाता हैं।

iv. स्त्रियों में ऋतुस्राव नियमन, पुरुषों की नपुंसकता को दूर करने, थक्का बनने की क्रिया रोकने, लघ्वान्त्राग्र व्रण आदि के इलाज में भी पोस्टाग्लैन्डिनों का उपयोग हो रहा है।

पोस्टाग्लैन्डिनों के औषधीय उपयोगों पर शोध कार्य सतत रूप से चल रहा है। आशा है कि भविष्य में ये कई अन्य गम्भीर रोगों से मनुष्य को मुक्ति देने में सक्षम सिद्ध होंगे।

डा. रघुनन्दन प्रसाद चमोली,
अध्यक्ष रसायन विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कोटद्वार, गढ़वाल - 246147

क्या सूर्य निस्तेज हो रहा है?

सूर्य हमारे सौर मण्डल का केन्द्र है। वैज्ञानिकों द्वारा अब तक किये गये सर्वेक्षण और अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि सूर्य शनैः शनैः लगभग एक करोड़ वर्षों के पश्चात् निस्तेज हो जाएगा और इसके तापमान में भी कमी आयेगी। सूर्य, जो वास्तव में एक तारा है, सहित अन्य सभी तारों में हाइड्रोजन गैस संलयित होकर हीलियम गैस में परिवर्तित होती रहती है। इस निरंतर चलने वाली प्रक्रिया से ताप और प्रकाश दोनों ही उत्पन्न होते रहते हैं। वास्तव में यह क्रिया सूर्य के अंदर हो रहे तापीय एवं नाभिकीय टकरावों के फलस्वरूप निरन्तर चलती रहती है और अनुमानतः 10_{17} पौण्ड हाइड्रोजन का उपयोग प्रति सेकेण्ड की दर से होता रहता है। इस दर से अगले $5x10^{5}$ वर्षों में सूर्य में उपस्थित समस्त हाइड्रोजन गैस समाप्त होने की संभावना व्यक्त की जा रही है। इस समय के उपरान्त सूर्य एक ''लाल दानव तारे'' के रूप में आ जायेगा।

लाल दानव तारे का भविष्य उसके द्रवमान पर निर्भर करता है। यदि तारे का द्रव्यमान लगभग सूर्य के बराबर है तब वह ''श्वेत वामन तारा'' बन जाता है। जब इसकी समस्त हीलियम समाप्त हो जाती है तो इसकी दीप्ति (प्रकाश) कम होना प्रारंभ होता है। सिकुड़ते हुये इस तारे के क्रोड में उत्पन्न ऊर्जा के कारण बाह्य-कवच का तीव्र चमक के साथ विस्फोट हो जाता है और तब ऐसे तारे को ''सुपरनोवा'' कहा जाता है। विस्फोट के फलस्वरूप कवच का पदार्थ अंतरिक्ष में बिखर जाता है। भारी क्रोड सिकुड़ता ही चला जाता है और इस प्रकार ''न्यूट्रॉन'' तारा बनता है। इस तारे का भविष्य पुनः द्रव्यमान पर आधारित होता है। ऐसा समझा जाता है कि भारी न्यूट्रॉन तारे में अत्यधिक परिमाण में द्रव्यमान असीमित सिकुड़ने के कारण एक ही बिन्दु पर संकुचित हो जायेगा। इस प्रकार असीमित घनत्व के द्रव्य युक्त पिण्ड को ''ब्लैकहोल'' के नाम से जाना जाता है। इस ब्लैक होल से किसी भी द्रव्य यहां तक कि प्रकाश का पलायन भी संभव नहीं होता है अतएव यह कभी दिखाई नहीं पड़ता है।

लाल दानव तारों का परिमाण विशाल होता है इसी कारण इनका नाम पड़ा है। उदाहरणार्थ बीटेलग्यूज नामक दानव तारे का व्यास लगभग 4,80,000,000 कि.मी. है जो सूर्य से 350 गुना बड़ा है। मीरा नामक एक अन्य दानव तारे का व्यास 640,000,000 कि.मी. है। इसी प्रकार सूर्य का व्यास भी लाल दानव तारे के रूप में पहुंचने पर 1000 गुना हो जाएगा। इसका लाल प्रकाश भी 1000 गुणा बढ़ जाएगा। उस अवस्था में पृथ्वी की क्षितिज का 25% भाग सूर्य घेर लेगा और बुध तथा वीनस जैसे इसके निकटवर्त्ती ग्रह पिघलकर नष्ट हो चुके होंगे। महासागरों का वाष्पीकरण हो जाएगा और पृथ्वी एक सूखी निर्जन शिला के रूप में दिखलाई देने लगेगी। इसकी बाहरी सतह पर 327° से. तापमान होगा। इस प्रकार सूर्य लाल दानव तारे के रूप में लगभग 10^{11} वर्षों तक बना रहेगा और धीरे-धीरे इसकी बाहरी कोर समाप्त होकर एक सूक्ष्म कोर मात्र शेष रहेगी। यह अवस्था एक घूमिल श्वेत वामन तारे की अवस्था कहलाती है। उस समय इसका परिमाण बुध ग्रह से बड़ा नहीं होगा फिर भी इस अपेक्षाकृत लघु सूर्य के चारों ओर जली हुई पृथ्वी परिक्रमा करती रहेगी।

सूर्य की सबसे बाहरी पर्त जो चमकती है प्रकाश आवरण कहलाती है। इसका तापमान

लगभग 6000 सें. होता है। इसके अंदर की ओर रक्त वर्ण आवरण होता है जिसका तापमान लगभग 32,400 सें. होता है। रक्त वर्ण आवरण के अंदर तीव्र जाज्वल्यमान क्षेत्र प्रत्यावर्त्ती आवरण कहलाता है इसका तापमान लगभग 32,4000 से. रहता है। सबसे अंदर सूर्य पिण्ड होता है जो ग्रहण के समय दिखाई पड़ता है इस पिण्ड का तापमान लगभग 2700,000 सें. होता है। यहां पर एक्स किरणें प्रस्फुटित होती रहती हैं।

सूर्य की बाहरी सतह में भी तापीय और नाभिकीय अभिक्रियायें निरंतर चलती रहती है। यहाँ पर केल्विन माप में तापमान लगभग 15×10^{6} K रहता है। तारों की सामान्य आयु अनुमानतः 10^{10} वर्ष मानी गई है और सूर्य की आयु लगभग 5×10^{9} वर्ष समझी जाती है। इसका वर्तमान में अनुमानित व्यास 1,392,000 कि.मी. है। रासायनिक संरचना के दृष्टिकोण से हाइड्रोजन की मात्रा सूर्य में 71% और हीलियम गैस की मात्रा लगभग 26.5% है। अंतरिक्ष में ब्लैक होल होने के कई प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। सिग्नस तारामण्डल में तीन ब्लैक होल पाये जाने की संभावना है।

ऐसी जानकारी के आधार पर वस्तुतः यह स्पष्ट होने लगा है कि यदि पृथ्वी से मानव जीवन को नष्ट होने से रोकना है तो सूर्य का भी कोई अन्य विकल्प खोजना ही होगा। मानव सूर्य का कोई विकल्प खोज पाता है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर तो केवल आने वाला समय ही दे सकेगा।

अखिलेश कुमार तिवारी,
C/o राम प्रताप तिवारी,
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम-रांची - 834 010

कैंसर के इलाज में : उच्च तापीयता एवं आत्म प्रतिरक्षा की सम्भावना

कैंसर एक ऐसा रोग है जिस का इलाज प्रायः असम्भव है। शायद यही कारण है कि रोग का आभास होते ही रोगी अपना मानसिक संतुलन खोकर स्वंय को मृत्यु के और समीप पाता है। रोगी मानसिक एवं शारीरिक रूप से हताश हो अपनी इच्छाशक्ति एवं आत्म विश्वास खोने लगता है और शरीर धीरे धीरे क्षीण होता जातां है।

परन्तु तथ्य यह भी है कि किसी भी रोग के निदान के लिए दवा का जितना महत्त्व है उससे कहीं अधिक महत्व रोगी के आत्मविश्वास एवं इच्छा शक्ति का।

जीवन की मूल इकाई कोशिका की वृद्धि, विभाजन एवं अन्य क्रियाएँ कोशिका में स्थित जीनों द्वारा नियंत्रित होती हैं परन्तु अगर किसी कारणवश ये अनियंत्रित हो जाये तो असामान्य रूप से कोशिकाओं की वृद्धि होने लगती है और एक अनचाहा समूह अर्बुद (ट्यूमर) का रूप धारण कर लेता है। प्रत्येक ट्यूमर कैंसर नहीं होता परन्तु प्रत्येक कैंसर ट्यूमर अवश्य होता है जिसकी जाँच जीवुति परीक्षण (बायोप्सी) द्वारा की जाती है।

कैंसर का निदान सभी कैंसर युक्त कोशिकाओं को मार कर ही हो सकता है जो अत्यन्त जटिल कार्य है क्योंकि कैंसर का प्रभाव न केवल शरीर के किसी हिस्से विशेष पर होता है वरन् अन्य दूरस्थ भाग भी इससे प्रभावित हुये बिना नहीं रहते है। इसलिये चिकित्सा जगत में इसका पूर्ण निदान अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं जटिल है। अर्बुद शास्त्री इस भयानक बीमारी के लिये सतत प्रयत्नशील हैं तथा अनेक नयी औषधियों एवं तकनीकी सहायता से कैंसर से मृत्यु दर कम करने में प्रयासरत् हैं। यों तो इसके निदान में मुख्यतः शल्यक्रिया, विकिरण पद्धति एवं रासायनिक चिकित्सा प्रयोग में लायी जाती है

परन्तु प्रतिरक्षा जनित एवं अति तापीयता (हाईपरथर्मिया) पद्धति पर भी परीक्षण हो रहे हैं।

अतितापीयता पद्धति तो ईसा से लगभग 2000 वर्ष पूर्व से ही प्रयुक्त होती रही है तथा हिप्पोक्रेप्स, बुष एवं कोले आदि वैज्ञानिकों ने कष्टकारी ट्यूमर के इलाज के लिये इसका प्रयोग किया था। यद्यपि 1930 में प्रतिजैविकी (एन्टीबायोटिक्स) के आविष्कार से इनका प्रयोग कुछ समय के लिये कम हो गया था। सन् 1967 में पुनः अतितापीयता का कैंसर के निदान में योगदान अति आवश्यक माना गया। इस विधि में गर्म लाल लोह (फेरम कैंडियम) तथा रासायनिक कास्टिक से कैंसर का इलाज किया जाता है। सम्भवतः यह विधि उच्च ताप पर ट्यूमर उत्तकों (Tissues) से रक्त प्रवाह कम होने, ट्यूमर कोशिकाओं के ताप के प्रति अधिक संवेदनशील होने, ``S" अवस्था में विकिरण की प्रतिरोधक परन्तु उच्च तापीय अवस्था में संवेदनशील होने तथा औपधियों के साथ उच्च तापीयता के सम्मिश्रण से संवेदनशीलता के कारण अधिक उपयोगी है। इसके लिये क्षेत्रीय एवं स्थानीय अतितापीयता विकिरण के लिये एक पूरक का कार्य भी करती हैं।

उच्च तापीय विधि में तापीय किरण भेदन की गहराई भी महत्त्वपूर्ण है। स्थानीय एवं क्षेत्रीय अतितापीयता की कई प्रणालियाँ विकसित हुई हैं । क्षेत्रीय हिस्सों में प्रभावशाली तरीके से तापमान में वृद्धि करके या विकिरण बारम्बारता 1356 से 2715 MHZ या सूक्ष्म तरंग 433, 915 तथा 2450 MHZ से इलाज किया जाता है। इनकी अपनी सीमायें होती हैं।

आयुर्वेद के अनुसार लोहा, ताम्बा, चाँदी, सोना, पारा, तथा मोती के भस्मों के सेवन से शरीरिक मूल अवरोधक शक्ति को बढ़ाया जा सकता है और ट्यूमर सिकुड़ने लगता है परन्तु यह कोई सरल कार्य नहीं है।

यद्यपि कैंसर के निदान में मुख्यतः शल्यक्रिया एवं रासायनिक चिकित्सा के उपरान्त विकिरण चिकित्सा भी की जाती है। ये विधियाँ प्रायः अत्यन्त कष्टकर एवं संदेहयुक्त होती हैं। कैंसर युक्त कोशिकाओं को कैंसर विहीन कोशिकाओं से पूर्णतः अलग करना प्रायः असम्भव है। इसके विपरीत आत्म प्रतिरक्षा प्रणाली एवं सुरक्षा निर्माण सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण कैंसर युक्त कोशिकाओं को नष्ट कर दिया जाता है।

हमारे शरीर के सुरक्षा प्रहरी हमारे रक्त में पाये जाने वाले श्वेत रक्त कण हैं। जब कोई वाह्य अजनबी वैक्टीरिया अथवा वायरस शरीर में प्रवेश करता है तो श्वेत रक्त कण सक्रिय हो कर विशेष प्रकार के कलिका या ग्रेन्युल लिम्फोकिन्स पैदा करते है। ये कलिकाएँ बिना कोई समय नष्ट किये तत्काल अन्य श्वेत रक्त कणों को इस आपातकाल की सूचना दे देती है, इस तरह सम्पूर्ण सुरक्षा बल को तैयार किया जाता है। लिम्फोकिन्स कलिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं। सैनिक, कमांडर तथा अर्ध सैनिक। सैनिक शरीर के सभी रक्त कणों को खतरे की सूचना देते हैं। तथा शत्रु वैक्टीरिया, वायरस आदि से युद्ध भी करते हैं। इसके अतिरिक्त अर्ध सैनिक लिम्फोकिन्स सैनिकों के नैतिक बल बढ़ाने में सहायता करते हैं तथा इन्टरल्युकिन-2 नामक आयुध जो इस युद्ध के लिए अति आवश्यक है, की भी आपूर्ति भी करते हैं।

कमाण्डर लिम्फोकिन्स महा भक्षी होते है एवं सम्पूर्ण सुरक्षा योजना का संचालन भी करते हैं। ये ही शत्रु कोशिकाओं या अन्य धुसपैठिये बैक्टीरिया, वायरस तथा अन्य कैंसरजनीय को हमारे शरीर में खोजकर तथा मृत बैक्टीरियों को शरीर से बाहर निकाल कर सुरक्षा प्रदान करते हैं। विशेष अवसर पर यदि इन लिम्फोकिन्स को यथेष्ट एवं उचित सहायता मिलती है तो ये एक विशिष्ट प्रकार का रसायन पैदा करके ट्यूमर या कैंसर जनीय को नष्ट करने में सक्षम होते है।

कोशिकाओं में पायाजाने वाला ''इन्टर

फैरान'' नामक प्रोटीन कैंसर युक्त कोशिकाओं को पहिचान कर मारने में सक्षम होता है। इन्टर फैरान से प्राप्त दो नये प्रोटीन लिम्फोटोक्सीन तथा ट्यूमर नेक्रोसिसफैक्टर (टी.एन.टी.) कैंसर के उपचार में काफी प्रभावशाली हैं। फिर भी कैंसर होता है? कही इनके उत्पादन में कमी के कारण तो नही?

आत्म प्रतिरक्षा उपचार का आनुवांशिक अभियांत्रिकी से गहरा सम्बन्ध है। भविष्य आशावान एवं उज्जवल है। शायद निकट भविष्य में कैंसर एक असाध्य रोग नही रहे ।

एम. एल. भगत, वैज्ञानिक,
आर. पी. तिवारी तकनीकी अधिकारी
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम, राँची - 834 010

जीवाणु और विषाणु बम

अभी तक तो हम लोग परमाणु बम के समझौतों में ही उलझे हुये थे लेकिन अब एक और बला जैव प्रौद्योगिकी ने मानव के सिर पर मड़ दी है। यह सच है कि आज वैज्ञानिकों ने परमाणु व न्यूट्रान बम की तरह जीवाणु व विषाणु बम भी बना लिये हैं। जैव प्रौद्योगिकी आज उन्नति के उस शिखर पर है जहाँ पर आजरत्व, अमरत्व व रोग मुक्ति के वरदान ही नही वरन अभीष्ट गुणों वाले मनुष्य जीवाणु और वनस्पति की रचना का शिल्प भी मानव के हाथों खेल रहा है। यदि जैव प्रौद्यौगिकी के दोनो पक्षों पर दृष्टि डाली जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जैव प्रोद्योगिकी मनुष्य के लिये मंगलमय भी है और अमंगलमय भी। जीवाणु सूक्ष्म एक कोशीय जीव होते है तथा इनकी लम्बाई 3 से 5 माइक्रोन तक होती है। वैक्टीरिया की कोशा कई प्रकार की होती है जीवाणु मनुष्यों एवं अन्य जीवित वस्तुओ (पौधों तथा जन्तुओं) के लिये विविध प्रकार से हानिकारक हैं यह मनुष्यों में बहुत से भयानक रोग जैसे तपेदिक, निमोनिया, टाइफाइड, पेचिस आदि रोग उत्पन्न करते है।

जीवाणु भैसों व गायों में तपेदिक, भेडों मे एन्थ्रैक्स, मुर्गी में हैजा, घोडों में निमोनिया तथा अन्य रोग पैदा करने में सक्षम होते हैं। पौधों में आलू का वलय रोग, नींबू का वल्प रोग, गेहूँ की पन्ती का अपक्षय रोग आदि बीमारियां इनके द्वारा हो होती है। इसकी कुछ प्रजातियां खाने की वस्तुओं को नष्ट करती हैं कार्बन व नाइट्रोजन जो प्रकृति के मुख्य तत्व हैं वैक्टीरिया द्वारा ही सन्तुलित होते हैं। कुछ जीवाणु ऐसे हैं जो नाइट्रेटस को स्वतंत्र नाइटोजन व अमोनिया में बदल देते हैं जिससे भूमि में नाइट्रोजन की कमी हो जाती है और फसल खराब हो जाती है। दूसरी तरफ विषाणु भी सूक्ष्म पराश्रयी अल्ट्रा माइकोस्कोपिक रोग फैलाने वाले जीव है जिनका आइवनास्की ने 1892 में पता लगाया था। रोग के हिसाब से इनको पादप विषाणु, मैमेलयन विषाणु इन्सैक्ट विषाणु, और वैक्टीरियल विषाणु में बाँटा गया है। ये विभिन्न प्रकार के रोग फैलाकर काफी हानि पहुंचाते हैं।

यदि जीवाणु व विषाणु बम बनाने की कोशिश इसी प्रकार की जाती रही तो इसके नतीजे परमाणु बम व न्यूट्रान बम से कम प्रलयकारी एवं विनाशकारी नही होंगे बल्कि कई अर्थो में उससे अधिक भयंकर ही सिद्ध होंगे। ऐसा इसलिये क्योंकि अभियांत्रिक जीवन स्वरूप कमोवेश रूप से अदृश्य हैं और इसका प्रभाव मानव, पशु एवं जीव जगत पर अभी अज्ञात है। परमाणु संयत्र एवं परमाणु विस्फोट को देखा या सुना जा सकता है। पुनः परमाणु विकिरण बढ नही सकते। परन्तु जीवाणु व विषाणु की संख्या प्रयोगशालाओं में निर्मित जीवित जैवक बढाए जा सकते हैं। अदृश्यता एवं वृद्धि की क्षमता पर्यावरणीय विस्फोट का खतरा पैदा कर सकती है। निकारागुआ में डेगू वायरस ने इसी प्रकार महामारी फैला दी थी। यह अमरीका की

(शेष पृष्ठ 56 पर)

विज्ञान समाचार

भा.प.अ.केंद्र में

१. बोरोन कार्बाइड और बोरोन कार्बाइड संबंधित मिश्रको (कंपोजीटों) का विकास

बोरोन कार्बाइड में लगभग 78.3% बोरोन होता है। अतः इसे सामान्यतः तकनीकी बोरान कह देते हैं। प्राकृतिक बोरोन में केवल 18% बोरोन-10 (^{10}B) होता है, जिसका न्यूट्रान अवशोषण अनुप्रस्थ 4000 बार्न है। अतः अन्य पदार्थों की तुलना में बोरोन अच्छा न्यूट्रान अवशोषक है। (^{10}B) की अधिकता के कारण ही बोरोन कार्बाइड (B4C) में तापीय न्यूट्रानों के लिए 6 का मान 600 बार्न है जिसे कंट्रोल नियंत्रक छड़ों और न्यट्रान परिरक्षण के अन्य अनुप्रयोगों के लिए यह उपयोगी है। बोरोन कार्बाइड का दूसरा लाभ यह है कि इसमें न्यूट्रान अवशोषण से लगभग कोई रेडियो सक्रियता उत्पन्न नही होती है, यह सिर्फ एल्फा (α) कण उत्पन्न करता है, जो किसी भी माध्यम में अवशोषित हो जाते हैं। इसकी तुलना में अन्य अवशोषक पदार्थ जैसे कैडमियम और हाफनियम आदि न्यूट्रान का अवशोषण कर अधिक ऊर्जा वाली गामा (γ) किरणें उत्सर्जित कर कई अन्य समस्थानिक उत्पन्न करते हैं। अतः इनके उपयोग से न्यूट्रान परिरक्षण की और अधिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। बोरोन कार्बाइड का द्रवणांक काफी अधिक (2400°C) है। यह रसायनिकी रूप से स्थिर और मजबूत है तथा अन्य अवशोषकों की तुलना में कम मंहगा है।

परमाणु ऊर्जा विभाग की विभिन्न इकाईयों की न्यूट्रान अवशोषकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए भा.प.अ. केंद्र के पदार्थ विभाग ने बोरोन कार्बाइड और इससे युक्त मिश्रकों के विकास का कार्य प्रारंभ किया। मैटलजी प्रभाग में एक पाइलेट प्लांट लगाया गया जिसमें बोरोन कार्बाइड उत्पादन हेतु एक विशेषतः अभिकल्पित ग्रेफाइट भट्टी तथा अवकरण के बाद उसे उपचारित करने की सुविधा है। यहां उत्पादित बोरोन कार्बाइड पाउडर उच्च श्रेणी का अधिक घनत्व वाला है। इसका उपयोग तारापुर परमाणु ऊर्जा केंद्र (TAPS) की नियंत्रक छड़ों के निर्माण में परमाणु एटोमिक ईधन प्रभाग द्वारा किया गया है। इस समय इस तरह की कुछ छड़ें तारापुर एटोमिक पावर स्टेशन की पुरानी छड़ों के स्थान पर प्रयुक्त की जा रही हैं। यहाँ उत्पादित कार्बाइड पाउडर ध्रुव रिएक्टर ईधन मशीन वाल्टों की परिरक्षण (शिल्डिग) में भी किया जाता है।

बोरल (Boral) - जो कि अल्यूमिनियम बंधित बोरोन कार्बाइड मिश्रक है, की संविरचनाओं के निर्माण, उत्पादन और अनुसंधान पर भी कार्य हो रही है। यहा निर्मित कई बोरील प्लेटों का उपयोग ध्रुव रिएक्टर के पुंज-छिद्रों को परिरक्षित करने में किया गया है। आजकल एक नये लचीले परिरक्षक पदार्थ, बोरेटेड-सिलिकान, का उपयोग अनुसंधान व ऊर्जा रिएक्टरों में बढ़ता जा रहा है। इसका निर्माण सिलिकान रबर की संरचना (मैट्रिक्स) में 40 भार % बोरोन कार्बाइड मिलाकर तप्त-दाब विधियों से किया जाता है। यह मिश्रक पदार्थ 200°C तक का तापक्रम सह सकता है। इसका इस्तेमाल नरोरा के NAPS-II की ईंधन भरण की मशीनों में न्यूट्रानों को समस्या को हल करने में सफल रहा है।

NAPS-II में इस पदार्थ की सफलता के बाद पदार्थ प्रभाग ने 80 Kg बोरोन कार्बाइड पाउडर और 250 बोरेटेड सिलिकान रबर चादरों को इसी तरह के इस्तेमाल के लिए काकरापार ऊर्जा केंद्र (KAPS) को दिया है। इनका उपयोग KAPS की पहली ईकाई में किया जायेगा। KAPS-II में भी इन बोरेटेड-सिलिकान की 500 चादरों का उपयोग ईधन लाभ मशीनों के परिरक्षण में करने की योजना है।

२. हाइड्रोजन समस्थानिकों का गैस क्रोमोटोग्राफी द्वारा पृथक्करण

हाइड्रोजन के विभिन्न समस्थानिकों हाइड्रोजन (H), ड्यूटिरियम (D) और ट्रिटियम (T) को गैस वर्ण लेखी (क्रोमोटोग्राफी विधि द्वारा अलग-अलग करने की दृष्टि से विभिन्न आण्विक छन्नियों का अध्यमन इस केंद्र के रसायनिकी प्रभाग द्वारा किया गया। सामान्य छन्नियों, जैसे 4A, 5A, 13X और AW500 आदि का उपयोग पूर्ण निर्जलित या आंशिक निर्जलित अवस्था में किया जाता है पर दोनों ही अवस्थाओं में ये छन्नियाँ हाइड्रोजन के समस्थानिकों को अलग-अलग करने हेतु पूर्ण रूपेण उचित नहीं पायी गई। 4A प्रकार की आण्विक छन्नी आंशिक अवस्था में H2 और D2 को तो अलग कर देती है पर इससे H2 और HD अच्छी तरह पृथक नही होते हैं। लौह (Fe) विलेपित या विनिमयित 4A, 5A, 13X और AW500 आण्विक छन्नियां आंशिक

नर्जलीय अवस्था में समस्थानिकों के मिश्रणों H2, HD, D2 और H2, HT, T2 को अलग कर ती हैं। पृथक्करण की सफलता आण्विक छन्नियों में लेपित लौह की मात्रा और उनमें बची नमी पर निर्भर करती है। 15% लौह लेपित 5A और 5% लौह लेपित A आण्विक छन्नियों से पृथक्करण के अच्छे परिणाम मिले हैं।

प्रस्तुति : **डा. कैलाश चन्द्र भल्ला**

अन्य समाचार

1. दिल की सुरक्षा के लिए नकली वसा

कहते हैं, चरबी के बढ़ने से शरीर में कोलेस्टेरोल की मात्रा बढ़ जाती है और कोलेस्टेरोल का बढ़ना दिल का दौरा पड़ने की पहली सीढ़ी है। यही सबब है, अपनी सेहत के प्रति जागरूक अमरीकी संतृप्त वसा के बजाय नकली वसा को ज्यादा पसंद करने लगे हैं।

कोलेस्टेरोल एक रंगहीन मौमिन्ना पदार्थ है जो शरीर में स्वाभाविक रूप से भी पैदा होता है। इसके अतिरिक्त कोलेस्टेरोल संतृप्त वसा माखन, पनीर, अंडा जैसे खाद्य पदार्थों में भी होता है। संतृप्त वसा सामान्य ताप पर ठोस होते हैं। कोशिका-झिल्ली और यौन हार्मोन के निर्माण में कोलेस्टेरॉल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त ये भोजन के पाचन में भी मदद करते हैं।

हाल के कुछ वर्षों में दिल की बीमारी से जोड़े जाने के कारण कोलेस्टेरॉल काफी बदनाम हो गया था किन्तु सच्चाई यह है कि नुकसान पहुंचाने का काम कम घनत्व वाले लाइपो प्रोटीन L.D.L.) करते हैं। जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तो ये कोलेस्टेरोल को रक्त प्रवाह में ढकेल देते हैं। यह कोलेस्टेरोल धमनियों की दीवारों पर जम कर उन्हें अवरुद्ध कर देते हैं। इससे रक्त-प्रवाह रुक जाता है और दिल का दौरा पड़ता है। इसके विपरीत उच्च घनत्व वाले लाइपो प्रोटीन (H.D.L.) अतिरिक्त कोलेस्टेरोल को आत्मसात कर लेते हैं। अब यह माना जाता है कि H.D.L. की अधिकता और L.D.L. की कमी से इंसान को दिल का दौरा नहीं पड़ता।

दरअसल मनुष्य के भोजन में संतृप्त वसा आवश्यक नहीं होते, वे यकृत को अधिक L.D.L. उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए अमरीका में खाद्य उद्योग कम वसा और कम कोलेस्टेरोल वाली चीजें बना रहा है। इस प्रकार हमें यह आशा करनी चाहिए कि आने वाले दिनों में हृदय रोगियों के लिए सुरक्षित खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकेगा।

प्रस्तुति: डॉ. सीताराम सिंह पंकज

2. जीवाणु : पेय जल की भावी आशा

विश्व के अनेक देशों में निरन्तर बढ़ती जन संख्या तथा पेय जल की कमी के साथ साथ रसायनिक खादों तथा कीट नाशकों के बढ़ते प्रयोग ने समस्या को विकराल रूप प्रदान किया है। कुछ विषाणुओं पर तो शुद्धिकरण तथा असंक्रमण विधि का कोई प्रभाव ही नही पड़ता है। पेय जल समस्या एक भीषण एवं विश्वव्यापी रूप लेती जा रही है। अभी हाल में इंग्लैण्ड के लोबोरो विश्व विद्यालय के जल अभियांत्रिकी विभाग के अध्यक्ष डॉ. एण्ड्रयू वीटले तथा उनके साथियों ने कुछ ऐसे जीवाणुओ (बैक्टीरिया) की खोज की है जो मिट्टी में रहकर पानी में व्याप्त जीवाणुओं (वाइरसों), कीटनाशक तथा अन्य हानिकारक रसायनों को खाकर जीवित रह सके। वे ऐसे DNA यंत्र भी बना रहे हैं जो विषाणुओं की उपस्थिति ज्ञात करते हैं।

डॉ. वीटले के अनुसार जल के शुद्धिकरण में भविष्य में जीवाणुओं के योगदान की प्रबल सम्भावनायें हैं।

प्रस्तुति - **हरिओम मित्तल**

(पृष्ठ 36 का शेष)

पदार्थ प्राप्त होता है। हो सकता है कि मरणोपरांत कीट के शरीर में आए बदलाव एवं तत्पश्चात रंजक निकालने की रासायनिक प्रक्रिया के कारण रंजक पदार्थ (जो कई अम्लों का मिश्रण है) का कुछ भाग अघुलनशील बन जाता हो।

तीसरी प्रक्रिया से प्राप्त रंजक पदार्थ में ऐसा प्रतीत होता है कि लाख कीट की रुधिर लसिका में पाए जानेवाले मुक्त अमिनो अम्लों का कोई भाग रंजक के साथ शिथिल बंध में रह जाता होगा, जिसके कारण प्राप्त रंजक न क्रिस्टल बन पाता है और न पाउडर के रूप में सुखाया जा सकता है। इस विधि से प्राप्त लाख रंजक सम्पूर्ण रुप से सुखाने बाद भी थोड़ा चिटचिटापन लिए पपड़ी या पलेक के रूप में आता है।

लाख रंजक के हाड्रोक्लोरिक अम्लीय-जलीय घोल से ऊन रेशम को सीधे नारंगी लाल रंग में रंगा जा सकता है। लाख रंजक के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग बन्धकों के मिलाने से अलग-अलग प्रकार क रंग प्राप्त किए जा सकते हैं। रंग बन्धक की मात्रा 2-5 प्रतिशत होती है जो रंगी जाने वाली वस्तु तथा व्यवहार में आए लाख रंजक की मात्रा पर निर्भर है। यथापि लाख रंजक रेशम तथा ऊन को रंगने में बहुत ही उपयोगी है तथापि अधिक कीमत होने के कारण इसका उपयोग अब वस्त्र या धागा रंगने या इस प्रकार के किसी उद्योग में नहीं होता है। जैसा पहले बताया गया है कि लाख रंजक के निराविपी गुण के कारण एवं अन्य इस प्रकार के निराविपी रंजकों, जैसे कोविनील या कारमिसिक एसिड के दुष्प्राप्यता के कारण लाख रंजक का व्यवहार विशेषतः खाथ सामग्रियों, औषधियों एवं कीमती प्रसाधन सामग्रियों को रंगीन बनाने के उद्योगों में दिन-ब दिन बढ़ता जा रहा है। हाल की खबरों से पता चला है कि, जापान, थायलैंड तथा चीन से प्रति वर्ष 5-6 हजार किलोग्राम लाख रंजक का आयात होने लगा है। चूँकि भारत में लाख की पैदावार एवं इसकी उद्योग विश्व में प्राचीन एवं सबसे आगे है, अतः यहां लाख रंजक तैयार करने एवं उसके निर्यात तथा आन्तरिक व्यवहारों की भी विशेष सम्भावनाएँ हैं। अपुष्ट खबरों से पता लगा है कि चीन लाख रंजक का अपरिशेधित कच्चा माल, ''रंग बट्टा'', भारत के ही कुछ प्रमुख लाख उद्योगों से आयात करता है एवं अर्धपरिशेधित अवस्था में जापान को निर्यात करता है जहां से लाख रंजक पूर्ण परिशोधित होकर सारे विश्व में निर्यात होता है। खेद का विषय है कि देश में सारी सुविधाएं एवं सम्भावनाएँ होने के बावजूद न लाख की पैदावार उल्लेखनीय रूप से बढ़ रही है और न यहां के प्रमुख उद्योगपति लाख रंजक तैयार करने हेतु आगे आ रहे है; पता नहीं आखिर क्यों?

डॉ. आर. एस. सेंगर
पादप कार्यिकी विभाग,
गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय,
पन्त नगर, नैनीताल-263 145.

(पृष्ठ 53 का शेष)

''निम्न तीक्ष्णता संघर्ष'' नामक युद्धगत अवधारण का हिस्सा भी हो सकती है। एक जानकार सूत्र के अनुसार ''एडस'' अमरीकी रक्षा वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित युद्ध जीवाणु है जो गलती से इतना भयंकर बन गया है। जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से उन्नत देशों में आगामी 5 या 10 वर्षो में ऐसे संक्रामक सूक्ष्म जीव निर्मित किये जायेंगे जो शारीरिक प्रतिरोधकता तथा किसी भी औषधि के काबू में नही आयेंगे।

अतः जो आज हम लोग जैव प्रौद्योगिकी तकनीक से इतना खिलवाड़ कर रहे हैं वह मानव जात के लिये ठीक नहीं है वर्ष 1988 में जापान के दो वैज्ञानिकों रेनेडय्मा तथा वनार्ड रोजियार ने यहाँ तक घोषणा कर दी थी कि सन् 2000 तक मानव सभ्यता का अन्त हो जावेगा और एक नयी सभ्यता की कोपलें फटेंगी। ग्रहों की स्थिति कुछ इस प्रकार से होगी कि प्रकृति का आक्रोश एक द्वन्द बनकर मानवों पर ही नही समस्त प्राणियों पर कट्टर बनकर टूटेगा। इससे एक तांडवी दृश्य उत्पन्न होगा, तीन चौथाई दुनिया इस विनाश के आक्रोश में समा जायेगी। निश्चय ही जैव प्रौद्योगिकी के रूप में जो महान शक्ति हमारे हाथ में आ गई है उसका नियंत्रण करके ही आत्म विनाश की लटकती तलवार को हटाया जा सकता है।

पृष्ठ 21 का शेष)

ल्स का निर्माण किया जाता है। सूक्ष्म गणक की हायता से समयानुसार अवरोध में कमी एवं उसके तिमान का शुद्धिकरण किया जाता है जिससे कि नवरोध में सूक्ष्मतम बदलाव आसानी से मापा जा के। शुद्धिकरण के बाद इन संकेतों को आलेख न्त्र के द्वारा छाप लिया जाता है। यह विधि वांछित ंग में 3-4 जगह दोहरायी जाती है।

त्र-1ख में तरंग 'ब स क्ष' हृदय संपदन के दौरान ांछित हिस्से में आए रक्त से उत्पन्न होती है एवं रंग 'क्ष य अ ज' शिराओं द्वारा वापस जा रहे क्त से उत्पन्न होती है। इस आलेख की तरंग 'ब । क्ष' के क्षेत्रफल से रक्त प्रवाह मान निम्न सूत्र ारा ज्ञात किया जाता है।

क्त प्रवाह मान =1000x'ब स क्ष' क्षेत्रफल ÷ कुल वरोध

-पल्स और 'स' बिन्दु की बीच का समय मापने । वांछित हिस्से मे स्पंदन पहुंचने का समय मान ात हो जाता है और धमनियों में रुकावट होने र वांछित हिस्सों में रक्त देर से पहुँचता है और -स' समय मान में वृद्धि हो जाती है।

मुखपृष्ठ पर दिये चित्र में एक बाइस वर्षीय हिला के आयतन आलेख दर्शाये गये हैं। बांई ओर 5 आलेख क्रमशः छाती, दांये हाथ के नीचे, ोहनी, कोहनी के नीचे तथा कलाई के हैं। इसी रह दांयी ओर के आलेख क्रमशः गर्दन तथा बांये थ के विभिन्न हिस्सों के है। प्राप्त रक्त प्रवाह मान था विभिन्न हिस्सों में स्पन्दन पहुंचने का समय मान म्न है।

ालिका-2 : एक रोगी से प्राप्त रक्त प्रवाह मान एवं समय मान

ांछित हिस्से	दांया हाथ रक्त प्रवाह मान	दांया हाथ समय मान मि.सै.	बांया हाथ रक्त प्रवाह मान	बांया हाथ समय मान मि.सै.
न्धे के नीचे	2.03	165	0.94	165
ोहनी	1.73	205	0.46	250
ोहनी के नीचे	1.41	210	0.24	220
लाई	2.08	225	0.47	270

ज्ञातव्य है कि स्वस्थ हाथ में रक्त प्रवाह मान 1.80 ± 0.35 तथा स्वस्थ पैर में 1.50 ± 0.30 होता है। इससे यह स्पष्ट है कि रोगी के बांए हाथ में रक्त प्रवाह बहुत कम हो रहा है तथा कन्धे के आस पास रुकावट है। इस रोगी के बांए हाथ में दर्द की शिकायत बनी रहती थी। इस रोगी की एन्जियोग्राफी में बांई द्विखण्डित धमनी (Subclavian Artery) का संकरा होना तथा सहायक धमनी का बन्द होना पाया गया, जो विद्युतीय अवरोध आयतन लेखिका के परिणाम से मेल खाता था।

भारतीय आयुर्विज्ञान शोध संस्थान द्वारा प्रायोजित शोध-कार्य के अन्तर्गत लगभग 400 रोगियों में आयतन लेखिका परिणामों की एंजियोग्राफी से तुलना करने पर ज्ञात हुआ है कि धमनियों तथा शिराओं की बाधाओं की सूचना विद्युत अवरोध तकनीक 97% तथा 80% तक सही सही देती है।

(पृष्ठ 10 का शेष)

व्यवहारतः सभी विज्ञान की सभी विधाओं के विकास में सहायता मिली है।

आज प्रकाशीय गति और उसकी प्रकृति के आधार पर यह जानना भी सम्भव है कि प्रकाश उत्सर्जित करने वाला पिण्ड किन किन तत्वों से मिल कर बना है, उसका तापक्रम क्या है? और उसकी गति तथा चुम्बकीय क्षेत्र कैसे हैं? इसका अर्थ यह है कि तारों के प्रकाश में उसकी संरचना, अंतरिक्षी द्रव्य के गठन और अन्य अनेक सूचनायें भी निहित है जिनके संपर्क में प्रकाश आता है।

पेड़-पौधों के पत्तों में प्रकाश की सहायता से महत्त्वपूर्ण रासायनिक प्रक्रियाएं सम्पन्न होती है। इन प्रक्रियाओं के उत्पाद ही पृथ्वी पर सभी जीवों का अस्तित्व बनाए हुये हैं। हम पौधों से अपना पोषण करते हैं इनमें दरअसल क्लोरोफिल के गुण का ही उपयोग करते हैं, जिसकी सहायता से वह सूर्य का प्रकाश अवशोषित करता है । ये प्रतिक्रियाएं फोटोग्राफी और अन्य रासायनिक परिवर्तनों के भी आधार है। इन्हें फोटो-रासायनिक प्रक्रियाएं कहते है।

इनमें रासायनिक प्रतिक्रियाओं का संचालन प्रकाशकीय ऊर्जा द्वारा होता है।

आज लेसर का प्रकाश ऐसे द्रव्य अलग करने में सहायक है, जो रासाययनिक आचरण के अनुसार लगभग समान होते हैं। होलोग्राफी, प्रकाशिक-कलन मशीनें, लेसरी ताप नाभिकीय संश्लेषण, लेसर-रसायन और ज्योति-प्रवाह के द्वारा मानव प्रकाश का और बेहतर उपयोग कर सकेगा।

हमारे यहाँ दीपावली एक पुराना पर्व है। प्राचीन काल के लोग प्रकाश का महत्त्व समझते थे, लेकिन इसके वैज्ञानिक स्वरूप को समझ पाना आधुनिक काल में ही संभव हो पाया है। अंधकार पर प्रकाश की विजय, लेकिन यह अंधकार है क्या बला? हमें अंधकार को भी समझना होगा।

(पृष्ठ 7 का शेष)

सिन्क्रोट्रॉन विकिरण की इस विशेषता का उपयोग फोटॉनों को प्रायोगिक कक्ष में रखे हुए सैम्पल (प्रदर्श) के छोटे हिस्से में केन्द्रित करने के लिए किया जाता है।

(iv) **ध्रुवण** : अधिकतम तीव्रता के आसपास के तरंग दैर्ध्यों के लिए यह विकिरण पूर्णतः इलेक्ट्रॉन कक्षा के तल में ध्रुवित होता है। उच्चतर तरंग दैर्ध्य के लिए ध्रुवण की कोटि घटती है किन्तु उपयोगी अधिकतम तरंगदैर्ध्य पर भी ध्रुवण 80% से अधिक है। इलेक्ट्रॉन कक्षा तल के बाहर यह विकिरण दीर्घवृत्तीय ध्रुवित होता है। कुछ विशेष वर्णक्रममापी प्रयोगों के लिए यह ध्रुवित विकिरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

(v) **समय-संरचना** : सिन्क्रोट्रॉन विकिरण स्पन्द (पल्स) के रूप में उत्सर्जित होता है। इन स्पन्दों की अवधि उप नैनो सेकेण्ड की कोटि का तथा दो स्पन्दों के बीच का समयान्तराल सेकेण्ड में होता है। यह स्पन्दित प्रकृति ज्यादातर प्रयोगों के लिए नगण्य है, किन्तु कुछ खास प्रयोगों के लिए सहायक है।

भारत की पहल : प्रगत प्रौद्योगिक केन्द्र, इन्दोर में 450 मेगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट के इलेक्ट्रान संचय-वलय इण्डस-1 (INDUS-1) का निर्माण तेजी से चल रहा है। इस मशीन का अभिलाक्षणिक तरंगदैर्ध्य नमन चुम्बकीय विकिरण के लिए 61.39 है। इससे निकलने वाला विकिरण अतिपराबैगनी वर्णक्रम भाग के प्रयोगों के लिए बहुत उपयोगी होगा। इस संग्रह-वलय पर उच्च विभेदन निर्वात पराबैगनी, प्रकाश भौतिकी, प्रकाश-इलेक्ट्रॉन वर्णक्रम दर्शिका आदि किरण पुंजों को विभिन्न प्रयोगों के लिए विकसित किया जा रहा है। यह मशीन विश्व की कुछ इनी गिनी मशीनों में एक होगी। इसके पश्चात् उच्च ऊर्जा संग्रह-वलय (-2 गीगा इलेक्ट्रान वोल्ट) इण्डस-2 का निर्माण विचाराधीन है। इस मशीन से कठोर एक्स-किरण प्रयोगों को जा सकेगा।

लेसर तथा सिन्क्रोट्रान विकिरण इस शताब्दी के दो अनोखे प्रकाश स्रोत हैं। लेसर प्रकाश कई मायने में सिन्कोट्रान विकिरण से श्रेष्ठतर है किन्तु इसकी उपलब्धता 1000A से नीचे के तरंगदैर्ध्यों के लिए सम्भव नहीं हो पायी है। वर्णक्रम के इस भाग के लिए सिन्क्रोट्रॉन विकिरण एक अद्वितीय प्रकाश स्रोत है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी एंजियोग्राफी परीक्षणके लिए यह विकिरण रोगियों के लिए वरदान सिद्ध होगा। सिन्क्रोट्रॉन विकिरण उत्सर्जन की आधुनिक विधिया (सन्निवेश यन्त्रों द्वारा) एक नये लक्ष्य मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेसर की ओर अग्रसर हैं। यह उपलब्धि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इस शताब्दी का एक क्रान्तिकारी कदम होगा।

कुछ फूल कुछ कांटे

वैज्ञानिक के वर्ष 25 अंक 2 (अप्रैल-जून 1993) में कई ज्ञानवर्धक रोचक लेखों का समायोज प्रशांसनीय व सराहनीय है हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद राजभाषा हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक लेखों का संकलन कर प्रति तीन मास वाद हमें विस्तृत जानकारी प्रदान करती है, यह स्तुत्य है। आप की इस अनूठी पत्रिका के लिए समर्पित निःस्वार्थ सेवा अनुकरणीय है। वैज्ञानिक में अगर विज्ञान विषयों पर हिन्दी भाषा में हो रही संगोष्ठियों का विवरण भी आ सके, तो हमें प्रपत्र व सारांश भेजने में सुविधा होगी रुचि होते हुए भी सूचना हमें मिल नही पाती है आशा है, 'वैज्ञानिक' पत्रिका संगोष्ठी आयोजकों लेखकों मे बीच सेतु का कार्य करेगी। यह पत्रिका जीवन्त बनी रहे व सार्थक सटीक सामग्री हमें नियमित देती रहे, यही कामना है।

दिलीप भाटिया
इंजीनियर एस.ई. राजस्थान परमाणु विनलीघर
अणुशक्ति-323 303 (कोटा)

(पृष्ठ 33 का शेष)
जाता है। इन वस्तुओं में चर्बी की मात्रा अधिक होती है जो मोटापे का कारण हैं। जहाँ तक हो सके क्रीम युक्त वस्तुओं का प्रयोग न कर, कम चर्बी वाले दही, योगर्ट, टमाटर की चटनी आदि का प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रकार वर्तमान अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में कार्बोहाइड्रेटों से मिलने वाले लाभों को देखते हुए भोजन में उन खाद्यपदार्थों को शामिल किया जाना चाहिए जो कार्बोहाइड्रेटों के अच्छे स्रोत हैं, विशेषतः वे अनाज, सब्जियाँ और फल जिनसे अधिक मात्रा में जटिल कार्बोहाइड्रेटों की प्राप्ति हो सके। वैसे कार्बोहाइड्रेट युक्त आहार दुग्ध-आहारों और गोश्तों से सस्ते भी पड़ते हैं। यह हाल में हुई नई वैज्ञानिक खोजों ने सिद्ध कर दिखाया है कि कार्बोहाइड्रेटों के सेवन को लेकर अब किसी झिझक की आवश्यकता नहीं ।

विज्ञान कविता

कुछ सपने संजोएं

धृतराष्ट्र को महाभारत दिखाते
संजय के दिव्य चक्षु
श्रीकृष्ण का वरदान
हमें नर लीला दर्शाते
दूरदर्शन के उपग्रह
विज्ञान के नेत्र कान
रामायण का स्टारवार
हुआ खाड़ी युद्ध में
पुनः साकार
उस युग की परिकल्पना को
दिया आधुनिक विज्ञान ने
यह आकार
हनुमान उड़े सूर्य की ओर
ग्रहों को जांचे अंतरिक्ष यान,
पुरुरवा की चिर यौवन लालसा को
चिकित्सा ने किया प्रमाण
गांधारी के सो घट बालक
हुए टेस्ट ट्यूब बेबी,
शिखंडनी बने शिखंडी
नहीं यक्ष का वरदान
सगर के साठ सहस्र पुत्र
लाए केवल एक भगीरथी
धरणीतल पर
आधुनिक मानव जहां चाहे
ले जाए जल धार,
पुरातन युग की कथा
बनी विज्ञान चमत्कार
यदि वे कल्पना ये सपना थे
अब हुए साकार,
हम भी कुछ सपने संजोएं
जिन्हें भावी युग दे आकार.

- मेघ सचदेव
न्यूक्लीयर पावर कारपोरेशन
विक्रम भवन, बम्बई-१.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंबई - 400 085

वार्षिक प्रतिवेदन - वर्ष 1992-93

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की वर्ष 1992-93 की गतिविधियां इस प्रकार रहीं। **वैज्ञानिक** की छपाई का कार्य इस वर्ष भी भापअ केंद्र के पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग के माध्यम से किया गया। इसी कारण से हम अब **वैज्ञानिक** में अधिक लेख छाप सके तथा इसकी गुणवत्ता में भी सुधार ला सके। इस वर्ष **भूकम्प विज्ञान में प्रगति - एक अवलोकन, भारत में विज्ञान: सफलता के पथ पर** विशेषांकों सहित चार अंक समय पर प्रकाशित किए गए । इन सभी के लिए हम विशेष रूप से डा. एम.आर. बालकृष्णन्, सम्पादन मंडल (डॉ. जर्नादन स्वरूप, डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल, डॉ. कैलाश चन्द्र भल्ला डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय एवं श्री हरिओम मित्तल) एवं व्यवस्थापन मंडल (डॉ. शिवप्रकाश गर्ग एवं अन्य सदस्य) के आभारी हैं।

विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन : यह विज्ञान पत्रिका विशेष रूप से उन सहयोगियों के लिए प्रकाशित की जा रही है जो विज्ञान में ज्यादा जानकारी नहीं रखते है। इस पत्रिका में विज्ञान एवं वैज्ञानिकों से संबंधित समाचार, परिषद की गतिविधियों की सूचनाएं एवं एक विशेष विषय पर वैज्ञानिक लेख इत्यादि का समावेश रहता है। इस वर्ष इसके चार अंक प्रकाशित किए गये। इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक डा. एस.पी. अवस्थी हैं।

हर वर्ष की तरह, इस वर्ष भी अखिल भारतीय वैज्ञानिक लेख प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसके अंतर्गत देश के विभिन्न भागों से कुल 47 वैज्ञानिक लेख प्राप्त हुए, जिनमें से 4 लेख अहिंदी भाषियों के थे। इन में से कुल 9 लेखों को पुरस्कृत किया गया जिनमें एक लेख अहिंदी-भाषी का भी है। इस वर्ष रु. 4800/- की धनराशि पुरस्कार के रूप में दी गई। इस लेख प्रतियोगिता के संयोजक श्री आई.जी. शर्मा थे।

वैज्ञानिक प्रश्नमंच : चौथे वैज्ञानिक प्रश्नमंच का आयोजन नेहरू जन्म दिवस समारोह के उपलक्ष्य में 26 नवंबर, 1992 को किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. आर.चिदम्बरम्, निदेशक, भाभा परमाणु अमुसंधान केंद्र ने की। इस में अणुशक्ति नगर, बंबई स्थित केंद्रीय विद्यालय की चार टीमों ने भाग लिया। इस प्रश्न मंच में विजेता छात्रों को इस केंद्र के तत्कालीन रसायनिकी एवं रेडियो रसायनिकी तथा आइसोटोप वर्ग के निदेशक डॉ. आर.एम. अय्यर द्वारा पुरस्कार भी प्रदान किए गये। इस कार्यक्रम को काफी लोकप्रियता मिली। लगभग 600 छात्रों ने दर्शक एवं श्रोता के रूप में इस प्रश्नमंच में भाग लिया। इस प्रश्नमंच कार्यक्रम के संयोजक डॉ. बी.के. मनचंदा, डॉ. वी.के. जैन, डॉ. एस.पी. गर्ग एवं डॉ. एस. त्रेहान थे। श्री वैद्य ने इस कार्यक्रम की व्यवस्था में सक्रियता से भाग लिया।

राजभाषा वार्ताएं : राजभाषा कार्यान्वयन समिति के साथ मिलकर इस वर्ष केवल एक ही वार्ता आयोजित की जा सकी। इस कार्यक्रम के संयोजक श्री रमेशचन्द्र पंत रहे। बंबई की कई बार बिगड़ती परिस्थितियों के कारण एवं रजत जयंती समारोह की व्यस्तता की वजह से अधिक वार्ताएं आयोजित नही की जा सकी।

वैज्ञानिक कार्यशाला : पिछले वर्षों की तरह इस बार भी हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में 17 सितम्बर,

1992 को **परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय उपयोग** विषय पर एक वैज्ञानिक कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों के लिए ही विशेष रूप से आयोजित की गई थी। यह इस तरह की तीसरी कार्यशाला थी। इसका उद्देश्य केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों को परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय उपयोगों एवं केंद्र में हो रहे अनुसंधानों की सरल जानकारी देना है। इस कार्यशाला का उद्घाटन केंद्र के तत्कालीन निदेशक, डॉ. आर. चिदम्बरम् ने किया। इसमें केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा कुल 6 पत्र पढ़े गये। विभाग के 300 पंजीकृत प्रतिनिधियों ने कार्यशाला में भाग लिया। इस कार्यशाला के साथ-साथ प्रतिभागियों के लिए 18 सितम्बर, 1992 को केंद्र के विभिन्न प्रभागों के शैक्षणिक भ्रमण की भी व्यवस्था की गई थी। इस कार्यक्रम के संयोजक श्री सुधाकर कोकाटे थे।

केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के परस्पर सहयोग से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में दिनांक 4 से 6 नवम्बर, 1992 तक **जन संचार माध्यमों के लिए हिंदी में विज्ञान लेखन** से संबंधित एक प्रशिक्षण/कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला का उद्घाटन इस केंद्र के भौतिक और इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण वर्गों के निदेशक डॉ. श्याम सुन्दर कपूर ने 4 नवम्बर को किया। केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के डॉ. अ. वसु ने कार्यशाला के उद्देश्य, लक्ष्य वर्ग, विषय इत्यादि का संक्षिप्त परिचय दिया। इस कार्यशाला में देश के विभिन्न संस्थानों से लगभग 25 सहभागियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। लक्ष्य वर्ग को ध्यान में रखते हुए और जन साधारण में वैज्ञानिक मानसिकता के विकास हेतु विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के विषय चुने गये। सहभागियों की चर्चा की सुविधा के लिए इन विषयों को तीन मुख्य वर्गों में रखा गया। प्रथम वर्ग में पर्यावरण एवं कृषि संबंधित आठ लेख, द्वितीय वर्ग में पोषण और अंधविश्वास के विभिन्न पहलुओं पर आधारित छः लेख और तृतीय वर्ग में समाज में अपराध, भवन निर्माण, परमाणु शक्ति, स्वाद विज्ञान, पेय जेल आदि विषयों पर छः लेख प्रस्तुत किये गये तथा उन्हें हर दृष्टि से लक्ष्य वर्ग को ध्यान में रखते हुए अंतिम रूप दिया गया। कार्यशाला के संयोजक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल एवं श्री रमेश चन्द्र पंत थे।

सेमिनार : नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों? :

पिछले वर्ष से हमने यह एक नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। इसका उद्देश्य विज्ञान के क्षेत्र में दिये जाने वाले श्रेष्ठतम पुरस्कार (नोबेल पुरस्कार) विजेता वैज्ञानिकों एवं उनके कार्यों के बारे में जानकारी देना है। इस वर्ष भी 1992 के दौरान रसायनिकी भौतिकी एवं मेडिसिन में पुरस्कृत वैज्ञानिकों के कार्यों पर प्रकाश डालने हेतु एक संगोष्ठी 13 जनवरी, 1993 को आयोजित की गयी। इस वर्ष निम्न वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार मिला और इनके कार्यों के बारे में चर्चा की गई।

भौतिकी :	डा. जार्जस चारपॉक (स्विटजरलैण्ड) कण भौतिकी में बहुतारीय गैस अनुपातिक काऊंटर (MWPC) की उपयोगिता
रसायनिकी :	डा. आर.ए. मारकस (संयुक्त राज्य अमेरिका) इलेक्ट्रॉन अंतरण अभिक्रियाएं
मेडिसिन तथा फीजियोलॉजी :	डा. एडविन क्रेब डा. एडमण्ड फिशर (संयुक्त राज्य अमेरिका) जीवन की गतिविधियों में प्रोटीन फोस्फोपिलेशन की भूमिका

इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री ए.एन. प्रसाद, तत्कालीन निदेशक, ईंधन पुनर्संसाधन एवं नाभिकीय अपशिष्ट प्रबंधन ग्रुप, वर्तमान निदेशक भा.प.अ. केंद्र ने की। इस संगोष्ठी में डॉ. रजनीकांत

चौधरी ने भौतिकी, डा. अविनाश सप्रे ने रसायनिकी तथा डा. श्री कुमार आप्टे ने मेडिसिन विषय पर नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों तथा उनके कार्यो पर प्रकाश डाला। इस कार्यक्रम के संयोजक डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल थे।

विद्यार्थियों के लिये शैक्षिक भ्रमण : परिषद ने पहली बार जूनियर कालेज के विद्यार्थियों के लिये भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का एक शैक्षिक भ्रमण कार्यक्रम का आयोजन किया। इसका उद्देश्य इन विद्यार्थियों को आधुनिक प्रयोगशाला में ले जाकर उन्हें वैज्ञानिक विषयों की सहज जानकारी देना है जिससे उनमें विज्ञान व भाषा के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो। इस अवसर पर डा. वी. ए. दासण्णाचार्य, निदेशक, ठोस अवस्था भौतिकी एवं नाभकीय वर्णक्रमदर्शकी वर्ग ने विद्यार्थियों को सम्बोधित किया तथा केंद्र में हो रहे कार्यक्रमों के बारे में बताया इस कार्यक्रम के संयोजक डा. राजेन्द्र स्वरूप थे।

रजत जयन्ती समारोह संगोष्ठी : हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की आधारशिला, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में, वर्ष 1968 में रखी गयी। 1993 में 25 वर्ष पूरे होने पर परिषद ने जनवरी में रजत जयन्ती समारोह का आयोजन किया। इसी संदर्भ में 18-20 जनवरी को परिषद ने भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन एवं इंडियन रेयर अर्थ लि. के साथ मिलकर **भारत में विज्ञान-सफलता के पथ पर** विषय पर रजत जयंती संगोष्ठी का आयोजन किया। संगोष्ठी का उद्घाटन डा. एम.एम. शर्मा, निदेशक, यू.डी.सी.टी. ने किया। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता परिषद के अध्यक्ष डा. आर. चिदम्बरम् ने की। इस संगोष्ठी में विशिष्ट प्रौद्योगिकियों और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में लब्ध प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों द्वारा नाभिकीय ऊर्जा, पर्यावरण संरक्षण, अंतरिक्ष विज्ञान, कंप्युटर, रक्षा विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, कृषि, आयुर्विज्ञान, जीव विज्ञान, समुद्र विज्ञान, ऊर्जा के अपरम्परागत स्रोत, पशुधन एवं खनिज व रसायन विषयों पर वार्ताएं प्रस्तुत की गई। इस संगोष्ठी के अवसर पर एक प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया जिसमें विज्ञान से संबंधित हिंदी साहित्य एवं अन्य सामग्री को दर्शाया गया। कई संस्थाओं ने इसमें भाग लेकर हिंदी विज्ञान साहित्य द्वारा आम व्यक्ति से जुड़ने के अपने प्रयत्न की एक झलक पेश की। इसके साथ ही संगोष्ठी संध्या पर केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद एवं क्रीड़ा एवं सांस्कृतिक परिषद, परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया जिसमें भारतीय संस्कृति की झलक नाट्य शैली द्वारा प्रस्तुत की गयी। इस संगोष्ठी एवं उससे जुड़े कार्यक्रमों में करीब 500 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। रजत जयंती समारोह के संयोजक श्री आर.एन. आर्य, डा. शिव प्रकाश गर्ग एवं श्री एन.के. अग्रवाल थे।

19 जनवरी की शाम को रजत जयन्ती के उपलक्ष्य एक विशेष स्नेह सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें 25 वर्षों से जुड़े सभी पदाधिकारियों तथा अन्य सहयोगियों को आमंत्रित किया गया। इस अवसर पर पुराने सहयोगियों ने संस्मरण सुनाये तथा परिषद को आगे बढ़ाने के लिये कई सुझाव भी दिये। अध्यक्ष डा. आर. चिदम्बरम् ने पुराने पदाधिकारियों, संयोजकों एवं अन्य सहयोगियों को सम्मानित भी किया।

परिषद से जुड़ी सभी जानकारी तथा रजत जयन्ती संगोष्ठी में प्रस्तुत सभी व्याख्यानों को वैज्ञानिक के जनवरी-मार्च, 1993 अंक में प्रकाशित किया गया।

मानव स्वास्थ्य के कुछ आयाम- विषय पर संगोष्ठी : आयुर्विज्ञान प्रभाग भा.प.अ. केंद्र के साथ मिलकर 15 मार्च, 1993 को ''मानव स्वास्थ्य के कुछ आयाम'' विषय पर एक संगोष्ठी

का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन भारत सरकार के सचिव व परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष, डा. आर. चिदम्बरम् ने किया तथा सायन अस्पताल की डा. लेखा पाठक ने प्रमुख वार्ता दी। इस अवसर पर हृदय रोग, अति रक्त दाब, क्षय रोग, तनावपूर्ण जीवन, किशोरावस्था की समस्याएं, रेडियो आइसोटोपों के उपयोग तथा विकिरण आधारित विधियों जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर डाक्टरों एवं विशेषज्ञों ने व्याख्यान दिये। सभा के अंत में एक पैनल चर्चा भी आयोजित की गयी जिसमें आयुर्वेद, होमियोपैथी, ऐलोपैथी तथा स्वस्थ जीवन के विशेषज्ञों ने प्रतिनिधियों की कई भ्रान्तियों का निवारण किया। इस पैनल का संचालन बी.ए.आर.सी. अस्पताल की डा. उषा देसाई ने किया। इस तरह के अन्य कार्यक्रम करने हेतु भी कई लोगों ने सुझाव दिये। इसमें करीब 250 लोगों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम के संयोजक डा. सुनीता शर्मा एवं डा. दुर्गा प्रसाद पाण्डेय थे।

भावी कार्यक्रम - 1993-94

- वैज्ञानिक का प्रकाशन
- अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता
- विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन
- हिंदी दिवस संगोष्ठी (सितंबर, 1993) (नाभिकीय ऊर्जा एवं केंद्र के कार्यक्रम)
- वैज्ञानिक प्रश्न-मंच नवंबर, 1993 एवं शैक्षणिक भ्रमण (विद्यार्थियों के लिए)
- नोबेल पुरस्कार - किसे और क्यों (दिसम्बर, 1993)
- नाभिकीय ऊर्जा एवं विकिरण के उपयोग (जनवरी, 1994 बंबई के बाहर)
- रोबोटिक्स एवं आटोमेशन - (मार्च, 1994)
- राजभाषा वार्ताएं

सदस्य : इस वर्ष हमने 201 नये आजीवन सदस्य बनाए। इस वर्ष के अंत तक सदस्यों की संख्या इस प्रकार रही :

आजीवन सदस्य - 782

संस्थागत सदस्य - 85

इसके अतिरिक्त 205 **वैज्ञानिक** के वार्षिक ग्राहक रहे।

इस वर्ष हमने अपने सभी योजनाबद्ध कार्यक्रम किये और इनमें हमें काफी सफलता भी मिली और इन प्रयासों को सभी ने सराहा। इसके साथ हमने परिषद के 25 वर्ष पूरे होने पर रजत जयन्ती समारोह/संगोष्ठी का विशेष आयोजन किया तथा उन सभी व्यक्तियों को सम्मानित भी किया जिनके अथक परिश्रम से परिषद को यह गौरवमय स्थान मिला है। इन सभी कार्यक्रमों के आयोजन एवं उनकी सफलता का श्रेय परिषद के अध्यक्ष डा. आर. चिदम्बरम् एवं उपाध्यक्ष, डा. दीन दयाल सूद के मार्गदर्शन एवं कार्यकारिणी समिती के सभी सदस्यों से प्राप्त सहयोग को जाता है। इसके साथ परिषद के विभिन्न कार्यक्रमों के लिये प्राप्त प्रशासनिक सहायता के लिये हम भा.प.अ. केंद्र के नियंत्रक, कार्मिक प्रभाग के अध्यक्ष पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग के अध्यक्ष तथा हिंदी कक्ष के प्रति आभारी हैं। परिषद को राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद से भी काफी सहयोग मिला है। इसके लिये हम विशेष रूप से श्री एस.के. शर्मा, डा. एस.एस. कपूर, डा. रामशेष तथा डा. अशोक ताम्हनकर के आभारी हैं।

ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी (सचिव)

संकलन

पिछले अंकों की अनुक्रमणिका (गतांक से आगे)

जनवरी-मार्च 1984 — 16(1)

लेख

भारत में औद्योगिक सुरक्षा एवं दुर्घटना निवारण — 7
- प.गो. गोपकुमार मेनन

मानव स्वास्थ्य का शत्रु : शोर प्रदूषण — 11
- नरेश चंद्र 'पुष्प'

थार मरुस्थल की जल समस्याएं — 19
- डॉ. रामगोपाल

आधुनिक लड़ाकू विमानों की क्षमता का रहस्य — 23
- राज कुमार जैन

हमारे देश की उपलब्धियां : एक अवलोकन — 29
- जनार्दन स्वरूप

कृषि तकनीकें प्रयोगशाला से गांवों तक — 33
- डा. उमेश चन्द्र पाण्डेय

प्राचीन भारत में हस्ति विज्ञान — 36
- डॉ. रमेश सोमवंशी

स्तंभ

इसे भी समझिए — 39
विज्ञान के बढ़ते कदम — 41

अप्रैल–सितंबर 1984 — 16(2/3)

लेख

भारतीय विकास कार्यक्रम और न्यूक्लीय विज्ञान — 7
- डॉ. पी. के. अयंगार

'ध्रुव' परियोजना : एक परिचय — 11
- एस. एम. सुंदरम

'ध्रुव' परियोजना : कुछ उल्लेखनीय तथ्य — 15
- अनिल काकोडकर

'ध्रुव' रिएक्टर - भवन निर्माण कार्य — 18
- डी. आर. बाटलीवाला

'ध्रुव' रिएक्टर की नियंत्रण प्रणाली — 24
- अशोक कुमार रे व ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव

'ध्रुव' हेतु ईंधन का निर्माण — 30
- ए. के. आनंद एवं के. बलराममूर्ति

पदार्थ अनुसंधान में 'ध्रुव' रिएक्टर की भूमिका — 36
- डॉ. समरथ लाल चपलोत तथा
  डॉ. अनंत दासण्णाचार्य

'ध्रुव' की वायुचलित वाहक (कैरियर) सुविधा — 45
- डॉ. एस. गंगाधरन एवं बी. बी. रुपाणी

रेडियो समस्थानिक उत्पाद और 'ध्रुव' रिएक्टर — 7
- आर. जी. देशपांडे

पूर्णिमा-2 रिएक्टर — 51
- डॉ. तेजेन कुमार बसु

'ध्रुव' की सैर — 58
- डॉ. उमेश चंद्र मिश्र

स्तंभ

परिषद समाचार — 63
बुद्धि कौशल की परख — 64
न्यूक्लीय विज्ञान में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द — 65

अक्टूबर-दिसम्बर 1984 — 16(4)

लेख

प्लास्टिक और मानव
- श्रीमती शशिकरण अंगीरस — 7

थैलियम धातु : कुछ जानकारी
- डॉ. महेश कुमार शर्मा — 11

कण, क्षेत्र और तरंग
- आइवन बी. राम — 15

अंतरिक्ष विज्ञान और मानव
- विनय कुमार भार्गव और राम लक्ष्मण पांडेय — 19

दीमकों का रासायनिक युद्ध
- डॉ. सुशीला राय — 21

टिप्पणियां

मेंढक तथा उनका पैतृक रक्षण
- संदीप कुमार मल्होत्रा — 24

वातावरण के सूक्ष्म तत्व
- डॉ. बी. के. पुरी एवं डॉ. कीमती लाल — 29

अंधविश्वास विज्ञान की कसौटी पर
- डॉ. विनोद तिवारी — 30

पान का विज्ञान
- डॉ. उमेश चंद्र पांडेय — 32

स्तंभ

सिद्धांत/सूत्र/समीकरण — 34
विज्ञान के बढ़ते कदम — 36
बाल-विज्ञान — 40
बुद्धि कौशल की परख — 43

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियोआइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रुप से विकास किया है एवं देश विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं प्रदत्त सेवाएं इस प्रकार हैं:

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स:**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत:**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसांधन:**
  सांचो तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर:**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा:**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई.सैट, वी.कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रुई, शल्य ब्लेड, दस्ताने, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया, अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें:

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,
विकिरण एवं आइसोटोप प्रोद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)
वि.ना.पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.
टेलीफोन : 555 16 76/555 31 45
तार : ब्रिटएटम, बम्बई-94. टेलेक्स : 11 72212 ब्रिट इन्

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए **श्री हरिओम मित्तल** द्वारा संपादित तथा **डॉ. शिव प्रकाश गर्ग** द्वारा **गुड्डी प्रिंटर्स**, मुलुंड बंबई में मुद्रित व प्रकाशित

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COM

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-NP